प्रचलित स्त्रोतसार्थ

संकलनकर्ता
मुनि प्रकाश

प्रकाशक : प्राप्ति स्थान
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ,
समता भवन, रामपुरिया मार्ग,
बीकानेर (राजस्थान) फोन : 544867

अनुक्रमणिका

1 सिद्धस्वरूप दर्शन — 1

2 पुच्छिस्सुणं (वीर स्तुति) — 11

3 श्री तिजय-पहुत्त स्तोत्र — 2[illegible]

4 उवसग्गं हर स्तोत्र — [illegible]

5 श्री नमिऊण स्तोत्र — 5[illegible]

6 परमेष्ठि महिमाष्टक — [illegible]

7 भक्तामर स्तोत्र — [illegible]

8 कल्याण मंदिर स्तोत्र — 70

9 चिन्तामणि स्तोत्र — 1[illegible]

अर्थसहयोगी का परिचय

चेन्नई निवासी श्री लालचन्दजीसा गेलडा का जन्म 1948, 25 अगस्त को हुआ। 18 वर्ष की लघु अवस्था मे आपके पिताजी श्री मदनचन्दसा गेलडा का स्वर्गवास हो गया।

आप उदार मन, दानवीर, धर्म-प्रेमी और बुद्धिमान व्यक्ति है। इन सद्‌गुणो के कारण आपने विपुल लक्ष्मी कमाई, यश और प्रतिष्ठा भी प्राप्त की। आप कई सामाजिक सस्थाओ से जुडे हुए है।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती कुमुद गेलेडा धार्मिक प्रवृत्ति की महिला है एव समय-समय पर धार्मिक कार्यो मे भाग लेती हैं। पति के सहयोग से आप कई सामाजिक सस्थाओ से जुडी हुई है और कई सस्थाओ की पदाधिकारी भी रही है। आप श्री हुक्मचद साहब ज्ञानदेवी लोढा की पुत्री हैं।

श्री लालचन्दजी साहब गेलडा के दो पुत्रियाँ श्रीमती रानी बरडिया और शिवानी बुंनलियाँ के विवाह प्रतिष्ठित और ऊचे परिवारो मे हुई है। पुत्र उदय गेलडा बी.बी.ए. कर रहे है।

साहित्य समिति

(श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर)

1	श्री गुमानमल चोरडिया	जयपुर	सयोजक
2	श्री इन्द्रचन्द बैद	भीलवाडा	सह सयोजक
3	श्री पीरदान पारख	बीकानेर	सदस्य
4.	श्री चम्पालाल डागा	बीकानेर	सदस्य
5	श्री भवरलाल कोठारी	बीकानेर/जयपुर	सदस्य
6	श्री सरदारमल कांकरिया	कलकत्ता	सदस्य
7	श्री केसरीचन्द सेठिया	मद्रास	सदस्य
8	श्री मोहनलाल मूथा	जयपुर	सदस्य
9.	श्री नेमीचन्द तातेड़	दिल्ली	सदस्य
10	श्री कमलचन्द सिपानी	बैगलोर	सदस्य
11	श्री सायरचन्द छल्लाणी	दिल्ली	सदस्य
12	डॉ संजीव भानावत	जयपुर	सदस्य
13	अध्यक्ष श्री गुमानमल चोरडिया	जयपुर	पदेन सदस्य
14	महामत्री श्री सागरमल चपलोत	निम्बाहेडा	पदेन सदस्य

सिद्ध स्वरूप दर्शन

कहि पडिहया सिद्धा, कहि सिद्धा पइट्ठुया।
कहिं वोन्दिं चइत्ताणं, कत्थ गंतूण सिज्झइ ॥1 ॥

अन्वयार्थ

सिद्धा कहिं पडिहया=सिद्ध भगवान कहाॅ पर अटके हुए है, **कहिं सिद्धा पइट्ठिया**=कहाॅ सिद्ध प्रभु प्रतिष्ठित है, **कही बोन्दिं**=कहाॅ इस शरीर को, **चइत्ताणं**=छोडकर, **कत्थ गंतूण**=कहाॅ जाकर, **सिज्झइ**=सिद्ध होते है।

भावार्थ

हे भगवन। चतुर्गति ससार का अन्त कर निर्वाण को प्राप्त होने वाली सिद्धात्मा किस स्थान पर अटके हुए है, वे सिद्ध परमात्मा कहाॅ प्रतिष्ठित है, इस शरीर का परित्याग करके वे कहाॅ जाकर सिद्ध होते है?

अलोगे पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पडिट्ठिया
इह बोन्दिं चइत्ताणं, तत्थ गंतूण सिज्झइ ॥2 ॥

अन्वयार्थ

सिद्धा=सिद्ध भगवान!, **अलोगे पडिहया**=अलोक मे जाने से रुक गये, **य लोयग्गे पडिट्ठिया**=और लोकग्र भाग मे उन की स्थिति है, **इह बोन्दिं चइत्ताणं**=इस मृत्यु लोक के औदारिक शरीर का परित्याग करके, **तत्थ**=उस सिद्ध क्षेत्र मे, **गंतूण सिज्झइ**=जाकर सिद्ध होते है।

भावार्थ

हे गोतम! गति मे सहायक गुण धर्मास्ति काय का अभाव अलोक मे होने से कृत कृत्य होने वाली सिद्धात्माएँ अलोक मे गति नही कर लोक के अग्रभाग पर ही रुक जाती है, अटक जाती है, वही पर उन सिद्ध भगवान की स्थिति है। इस कारण से सिद्ध स्वरूप को पाने वाली सिद्ध आत्माएँ अपने चरम शरीर का परित्याग इस मृत्यु लोक मे कर लोकाग्र भाग सिद्ध क्षेत्र मे जाकर सिद्ध होते है।

जं संठाण तु इहं भवं, चयं तस्स चरमि समयमि।
आसी य पएस घणं, तं संठाणं तहि तस्स ॥3 ॥

अन्वयार्थ

भवं चयं तस्स=ससार का परित्याग करते सिद्ध जीव का, **चरिम समयंमि**=अन्तिम समय मे, **इहं तु**=इस मनुष्य लोक मे, **जं संठाणं**=जो सस्थान है, **तस्स**=उसका, **तं संठाणं**=वह सस्थान, **तहिं**=उस सिद्ध क्षेत्र मे, **पएस घणं**=कान, ऑख आदि इन्द्रियो के रिक्त स्थान भर जाने से, प्रदेश घन रूप, **आसी**=होता है।

भावार्थ

परम धाम सिद्ध गति पाने वाले जीव का ससार छोडते अन्तिम समय मे जो सस्थान मनुष्य लोक मे शरीर का होता है वही संस्थान उसका उस सिद्ध क्षेत्र मे इन्द्रियादि रिक्त स्थानो के भर जाने से प्रदेश घन के रूप मे होता है।

दीहं वा हस्सं वा जं, चरिम भवे हवेज्ज संठाणं
तत्तो तिभाग हीणं, सिद्धा-णोगाहणा भणिया ॥4॥

अन्वयार्थ

दीहं वा=चाहे सस्थान दीर्घ हो अथवा, **हस्सं वा**=चाहे ह्रस्व हो, **जं चरिम भवे संठाणं**=जो मनुष्य जन्म का अन्तिम सस्थान होगा, **तत्तोतिभाग हीणं**=उससे तीसरा भाग हीन, **सिद्धाणं ओगाहणा भणिया**=सिद्ध भगवन्तों की सिद्ध क्षेत्र में अवगाहना कही गई है।

भावार्थ

चाहे मनुष्य की अवगाहना पॉच सौ धनुष की हो, अथवा दो हाथ की हो, अथवा वह मध्य अवगाहना वाला हो, अन्तिम भव के समय जो अवगाहना शरीर की होगी उसका तीसरा भाग कम सिद्धो की सिद्ध क्षेत्र मे ऊँचाई कही गयी है।

तिण्णि सया तेत्तीसा धणुत्ति भागो य होइ बोधव्वा।
एसा खलु सिद्धाणं, उक्को-सोगाहणा भणिया ॥5॥

अन्वयार्थ

तिण्णि सया तेत्तीसा=तीन सौ तेतीस, **धणुत्ति भागो य होई**=धनुष का तीसरा भाग होता है, **बोधव्वा**=ऐसा जानना चाहिए, **एसा खलु सिद्धाणं**=यह सिद्ध भगवन्तो की निश्चय, **उक्कोसं ओगाहणा**=उत्कृष्ट ऊँचाई, **भणिया**=कही गई है।

भावार्थ

एक हाथ चौबीस अगुल प्रमाण होता है और एक धनुष छियानवे अगुल प्रमाण होता है। इस अपेक्षा से धनुष का तीसरा भाग बत्तीस अंगुल होता है जिनका शरीर पॉच सौ धनुष की ऊॅचाई वाला है उनकी सिद्धावस्था मे तीन सौ तैत्तीस धनुष और बत्तीस अगुल ऊॅचाई रहती है। यह उन सिद्ध भगवन्तो की उत्कृष्ट अवगाहना कही गई है ऐसा जानना चाहिए।

चत्तारि य रयणीओ रयणिति भागूणिया य बोधव्वा।
एसा खलु सिद्धाणं मज्झिम ओगाहणा भणिया ॥6 ॥

अन्वयार्थ

चत्तारि रयणीओ य=चार हाथ और, **रयणिति भागूणिया**=एक हाथ का तीसरा भाग कम, **य बोधव्वा**=और जानना चाहिए, **एसा खलु सिद्धाणं**=यह निश्चय ही सिद्ध भगवन्तो की, **मज्झिम ओगाहणा भणिया**=मध्यम अवगाहना कही गई है।

भावार्थ

सात हाथ की शारीरिक ऊॅचाई वाले जो जीवसिद्ध होते है। उन जीवो की चार हाथ सोलह अगुल अवगाहना सिद्ध क्षेत्र मे रहती है। यह सिद्ध भगवन्तो की मध्यम अवगाहना कही गई है ऐसा जानना चाहिए।

एक्का य होइ रयणी, साहीया अंगुलाइ अट्ठ भवे।
एसा खलु सिद्धाणं जहण्ण ओगाहणा भणिया ॥7 ॥

अन्वयार्थ

एक्का य होइ रयणी साहीया=एक हाथ से कुछ अधिक, **अंगुलाइ अट्ठ भवे**=आठ अगुल होती है, **एसा खलु सिद्धाणं**=यह निश्चय ही सिद्धो की, **जहण्ण ओगाहणा भणिया**=जघन्य ऊॅचाई कही गयी है।

भावार्थ

जिनके शरीर की ऊॅचाइ दो हाथ प्रमाण है वे जव अपना अन्तिम समय शरीर छोडकर सिद्ध गति को प्राप्त होते है तब उनकी सिद्धावस्था मे अवगाहना एक हाथ से कुछ अधिक आठ अगुल रहती है, यह सिद्ध भगवन्तो की सबसे कम ऊॅचाई होती है।

ओगाहणाए सिद्धा, भवत्ति-भागेण होइ परिहीणा
संठाण मणित्थ-त्थं, जरा मरण विप्प-मुक्काणं ॥8 ॥

अन्वयार्थ

सिद्धा=सिद्ध भगवान, **भव**=अन्तिम जन्म के शरीर की, **ओगाहणाए**=अवगाहना से, **त्ति भागेण परिहीणा**=तीसरे भाग से हीन, **होई**=होते है, **संठाणं अणित्थत्थं**=उनका आकार किसी परिमण्डल या लौकिक आकार का रहा हुआ नही है, **जरा-मरण विप्प मुक्काणं**=जरा और मरण से रहित हो जाते है।

भावार्थ

सिद्ध स्वरूप मे अवस्थित सिद्ध अपने अन्तिम शरीर की ऊँचाई से तिहाई भाग ही कम और उनका आकार परिमण्डल आदि लौकिक आकार जैसा नही है। वे जन्म जरा-मरण आदि अवस्थाओ से सर्वथा रहित होते है।

जत्थ य एगो सिद्धो, तत्थ अणन्ता भवक्खय विमुक्का
अण्णोण्ण समोगाढा, पुट्ठा सव्वे य लोगन्ते ॥9 ॥

अन्वयार्थ

जत्थ=जिस क्षेत्र मे, **एगो सिद्धो**=एक सिद्ध प्रभु विराजमान है, **तत्थ अणन्ता**=वहाँ पर अनन्त सिद्ध विराजते है, **भवक्खय विमुक्का**=भवो का क्षय होने से जन्म मरण से रहित है, **अणोण्ण समोगाढा**=सिद्धात्माएँ परस्पर सम्यक्तया अवगाढ रूप में, **पुट्ठा**=स्पृष्ट होकर, **सव्वे य लोगंते**=और लोकाग्र भाग मे सभी रहते है।

भावार्थ

जिस स्थान पर एक सिद्ध भगवान है उसी सिद्ध क्षेत्र मे अनन्त सिद्ध जन्म मरण से रहित होने से रहते हैं। जैसे एक ही स्थान पर धर्मास्ति-काय आदि द्रव्य परस्पर एकमेक होकर रहते है। उसी प्रकार समस्त सिद्धात्माएँ लोक के अग्र भाग सिद्ध क्षेत्र मे एक ही स्थान पर अवगाढ रूप मे एक दूसरे को छूती हुई रहती है। परन्तु अपने-अपने अस्तित्व का परित्याग नही करते हुए रहती है।

फुसइ अंणते सिद्धे, सव्व पएसेहिं णियम सा सिद्धो
ते वि असंखेज्ज गुणा, देस पएसेहिं जे पुट्ठा ॥10 ॥

अन्वयार्थ

सा सिद्धो=वे सिद्ध भगवन्त, **णियमा सव्व पएसेहिं**=नियम से सर्व आत्म प्रदेशो से, **अणंत सिद्धे फुसई**=अनन्त सिद्धो का स्पर्श करते है, **ते वि असंखेज्ज गुणा**=वे सिद्ध भगवन्त भी असख्यात आत्म प्रदेशो से, **देश पएसेहिं**=देश-प्रदेशो से, **जे पुट्ठा**=जो स्पर्शित है।

भावार्थ

वह सिद्धात्मा नियम से सम्पूर्ण आत्म प्रदेशो के द्वारा अनन्त सिद्ध भगवन्तो का स्पर्श करती है और वे सिद्ध भगवन्त भी असख्यात आत्म प्रदेशो से देश प्रदेशो को स्पर्श किये हुए है।

असरीरा जीव घणा, उवउत्ता दंसणे य णाणे य
सागार मणागारं, लक्खण-मेयं तु सिद्धाणं ॥11 ॥

अन्वयार्थ

असरीरा जीव घणा=औदारिक आदि शरीर से रहित घन रूप आत्म प्रदेश वाले, **उवउत्ता दंसणे य णाणे य**=केवल ज्ञान और केवल दर्शन से उपयुक्त है, **सागारं**=केवल ज्ञान से साकार उपयोग वाले, **अणागारं**=केवल दर्शन की अपेक्षा निराकार उपयोग वाले है। **तु एयं लक्खणं सिद्धाणं**=निश्चय ही यह लक्षण सिद्ध भगवन्तो का है।

भावार्थ

शरीर से रहित और धन आत्म प्रदेश वाले सिद्ध भगवत केवल दर्शन और केवल ज्ञान से सम्पन्न है। वे सिद्ध भगवन्त ज्ञान की अपेक्षा साकार उपयोग वाले और दर्शन की अपेक्षा निराकार उपयोग वाले है। यही सिद्ध भगवन्तो का लक्षण है।

केवल णाणुवउत्ता जाणंति सव्व भाव गुणे भावे
पासंति सव्वओ खलु, केवल दिट्ठीहि णंताहिं ॥12 ॥

अन्वयार्थ

केवल णाण उवउत्ता=केवल ज्ञान के उपयोग से, **जाणंति सव्व भाव**=जानते है सम्पूर्ण पदार्थो के, **गुण भावे**=गुण-पर्याय को एक साथ, **खलु**=निश्चय ही, **केवल दिट्ठीहिं**=केवल दृष्टि से, **पासंति**=देखते है, **सव्वओ णंताहिं**=सत्र अविनाशी को।

भावार्थ

अनन्त केवल दर्शन से सम्पन्न वे सिद्ध भगवन्त अनन्त पदार्थो को गुण पर्याय सहित देखते है और केवल ज्ञान के उपयोग से एक साथ समस्त भावो को जानते है क्योकि पदार्थो मे उत्पाद व्यय और ध्रौव्य रूप गुण त्रिकालिक सम्बन्ध वाले होते है।

ण वि अत्थि मणुसाणं तं सोक्खं ण वि य सव्व देवाणं।
जं सिद्धाणं सोक्खं अव्वाबाहं उवगयाणं ॥13॥

अन्वयार्थ

उवगयाणं सिद्धाणं=मोक्ष प्राप्त हुए सिद्ध भगवंतो को, **अव्वाबाहं**=सर्व विघ्नो से रहित, **जं सोक्खं**=जो सुख मिला है, **तं सोक्खं**=उस प्रकार का सुख, **माणुसाणं वि**=मनुष्यो को भी, **ण अत्थि**=नही है, **य सव्व देवाणं वि**=और सर्व देवताओ को भी, **ण**=नही है।

भावार्थ

जन्म जरा मरण रूप चतुर्गति संसार परिभ्रमण के सर्वदु:खो का अन्त कर निर्वाण प्राप्त सिद्ध भगवन्तो को जो निर्विघ्न सुख की उपलब्धि हुई है उस प्रकार का सुख न किसी मनुष्य को मिला है और न ही समस्त देवो मे से किसी देव को प्राप्त है।

जं देवाणं सोक्खं, सव्वद्धा पिंडियं अणंत गुणं
ण य पावइ मुत्ति सुहं णंतेहिं वग्ग वग्गेहिं ॥14॥

अन्वयार्थ

जं देवाणं सोक्खं=जो देवताओ को सुख है, **सव्वद्धा पिंडियं**=उस त्रैकालिक सुख पिड को, **अणंत गुणं**=अनन्त गुणा करे तो भी, **ण पावइ**=नही पाता है, **मुत्ति सुहं**=निर्वाण के सुख को, **णंतेहिं वग्ग वग्गेहिं**=अनन्त वर्गो से वर्गित देवता का सुख।

भावार्थ

समस्त देवो के त्रैकालिक सुख को एक-एक आकाश प्रदेश पर स्थापित करे, उस सुख से आकाश के अनन्त प्रदेश भर जाए फिर उस सम्पूर्ण आकाश प्रदेशो के सुख को परस्पर गुणा करे तो वह देवताओ का सुख अनन्त गुणित हो जाता है। वह अनन्त गुणा दैविक सुख भी सिद्ध भगवन्तो को प्राप्त मुक्ति सुख के एक क्षण के बराबर भी नही है।

सिद्धस्स सुहो रासी, सव्वद्धा पिंडिओ जइ हवेज्जा।
सोऽणंत वग्ग भइओ, सव्वागासे ण माएज्जा ॥15 ॥

अन्वयार्थ

सिद्धस्स सुह रासी=सिद्ध भगवन्तो की सुख राशी को, **सव्वद्धा पिंडिओ जइ हवेज्जा**=सर्वकाल के समय से गुणित अगर होवे तो, **सो**=उस सुख को, **अणंत वग्ग भइओ**=अनन्त वर्गो से भाग दे तो भी, **सव्वागासे**=सम्पूर्ण आकाश प्रदेशो मे, **ण माएज्जा**=नही समा सकती है।

भावार्थ

ससार जिसे सुख मानता है, उस इन्द्रिय सुख मे एक एक गुण क्रमश· वृद्धि करते जाए। जब वह सुख अनन्त गुण वृद्धि पाकर अन्तिम अवधि को प्राप्त हो तब वह सुख अत्यन्त अनुपम, उत्कण्ठा वृत्ति से रहित प्रशान्त सागर सम गभीर चरम चक्षु रूप होता है। उस चरम सुख के पहले और प्रथम सुख के बाद जो तरतमता विशेष सुख मध्यम मे है। वह सुख राशि समस्त आकाश प्रदेशो से भी अधिक इसीलिए कहा गया है कि सिद्ध भगवन्तो का अनन्त वर्गो मे बटा हुआ सुख समस्त आकाश प्रदेशों मे नही समा सकता है।

जह णाम कोइ मिच्छो, नगर गुणे बहु विहे वियाणंतो।
ण चएइ परिक हेउं, उवमाए तर्हि असंतीए ॥16 ॥

अन्वयार्थ

जह णाम कोई=यथा नाम कोई, **मिच्छो**=मलेच्छ, **णयर बहु विहे गुणे वियाणंतो**=नगर के अनेक प्रकार के गुणो को जानता हुआ भी, **न चएइ**=नही कह सकता, **परिक हेउं**=वर्णन करने के लिए, **उवमाए**=उपमा का, **तर्हि असंतीए**=वहॉ अभाव है।

भावार्थ

जिस प्रकार कोई म्लेच्छ अनेक प्रकार के नगर के गुणो को जानने पर भी उसका वर्णन वन मे कर नही सकता क्योकि वहॉ उपमा का अभाव है। इसी प्रकार सिद्ध स्वरूपी आत्मा के अनन्त सुखो का वर्णन किसी भी उपमा द्वारा वर्णित नही किया जा सकता है।

इय सिद्धाणं सोक्ख, अणोवमं णत्थि तस्स ओवम्मं।
किचि विसेसेणेत्तो, ओवम्म-मिणं सुणह वोच्छं ॥17 ॥

अन्वयार्थ

इय सिद्धाणं सोक्खं=इस प्रकार सिद्ध भगवन्तो का सुख, **अणोवमं**=अनुपमेय है, **तस्स ओवम्मं णत्थि**=उसकी उपमा के लिए कोई पदार्थ नहीं है, **किंचि विसेसेणेत्तो**=कुछ विशेषताओ के द्वारा, **इणं**=इसको, **ओवम्मं**=उपमित कर समझाया जाता है, **सुणह**=सुनो, **वोच्छं**=कहता हूँ।

भावार्थ

इस प्रकार सिद्ध स्वरूपी आत्मा का सुख यद्यपि अनुपम है, सासारिक पदार्थो के सुख से उस सुख की तुलना हो नही सकती है फिर भी बाल जीवो को बोध कराने के लिए कुछ विशेष ढंग से सिद्ध भगवन्त के सुख को उपमा देकर कहता हूँ सुनो !

जह सव्व काम गुणियं, पुरिसो भोत्तूण भोयणं कोइ
तण्हा छुहा विमुक्को, अच्छेज्ज जहा अमियतित्तो ॥18 ॥

अन्वयार्थ

जह कोई पुरिसो=जैसे कोई पुरुष, **सव्व काम गुणियं**=सर्वेन्द्रियो को तृप्त करने वाले, **भोयणं भोत्तूण**=काम-भोगादिको अच्छी तरह से भोगकर, **तण्हा छुआ विमुक्को**=प्यास और भूख से रहित, **अमियतित्तो**=अमृत से तृप्त, **जहा**=जैसे, **अच्छेज्ज**=रहता है।

भावार्थ

कोई पुरुष सम्पूर्ण इन्द्रियो को तृप्त करने वाले श्रोतेन्द्रिय के शब्द रूप विषय, चक्षु इन्द्रिय के रूप विषय सम्बन्धी काम-लालसा और घ्राणेन्द्रिय सम्बन्धी गध, रसनेन्द्रिय सम्बन्धी स्वाद और स्पर्शनिन्द्रिय जनित स्पर्श रूप भोग वासना का छककर इच्छानुसार भोग करे, विषय सुख की कामना और भोग प्रवृत्ति मय चेष्टा से रहित बना हुआ वह अमृत से तृप्त सा रहता है।

इय सव्व कालतित्ता, अउलं णिव्वाण मुवगयासिद्धा
सासय-मव्वाबाहं, चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥19 ॥

अन्वयार्थ

इय णिव्वाणं उवगया=इस प्रकार अपुनरावृति रूप मोक्ष को पाएँ हुए, **सव्वकालतित्ता**=सदा काल तृप्त, **सिद्धा**=सिद्ध प्रभु, **अउलं**=अतुलनीय, **सासयं**=शाश्वत, **अव्वाबाहं**=बाधा रहित, **सुहं पत्ता**=सुख को प्राप्त, **सुही चिट्ठंति**=सुखी रहते है।

भावार्थ

चतुर्गति ससार के नानाविध दु खो का अन्त कर अपुनरावृत्ति रूप मोक्ष पाने वाली कृत कृत्य सिद्धात्मा सदा काल को तृप्त रहती है, वह सिद्धात्मा अनुपम, शाश्वत सुख का भोग निर्विघ्न करते हुए सिद्ध प्रभु सिद्ध क्षेद्ध मे सुख से सुखी सदाकाल रहते है।

सिद्धति य बुद्धत्ति य पारगयत्ति य परम्पर गयत्ति।
उमुक्क-कम्म कवया, अजरा अमरा असंगा य ।।20 ।।

अन्वयार्थ

सिद्धति=कृत कृत्य होने से सिद्ध है, **बुद्धत्ति**=सर्वलोक और अलोक जानने से बुद्ध है, **पारगयत्ति य**=भवसागर को पार करने से पारगत है, **परम्पर गयत्ति य**=मिथ्यात्व आदि गुणस्थानो और मनुष्यादि सुगतियो को लाघने से परम्परगत है, **कम्म कवया उमुक्क**=कर्मकवच से रहित होने से, **अजरा अमरा**=अजर अमर है, **असंगाय**=और सक्लेशो से रहित होने से असग है।

भावार्थ

निर्वाण प्राप्त सिद्ध भगवन्तो को कोई भी कार्य करना शेष नही रहने से वे कृतकृत्य कहलाते है, वे सर्वज्ञ होने से लोकालोक की सर्वकालिक सर्व अवस्थाओ को जानने से बुद्ध है, अपने स्वरूप मे सदा जागृत होने से भी बुद्ध है, भव सिधु को तैरने से वे पार पहुचे हुए है, मिथ्यात्व आदि चतुर्दश गुणस्थानो और ससार भ्रमण की गतियो का उच्छेद कर देने से परम्परगत है। कर्म कवच से सर्वथा रहित होने से वे अजर-अमर और असग कहलाते है।

णिच्छिण्ण सव्व दुक्खा, जाइ जरा मरण बंधण विमुक्का
अव्वाबाहं सुक्खं, अणुहोंती सासयं सिद्धा ।।21 ।।

अन्वयार्थ

सिद्धा=सिद्ध भगवन्त, **णिच्छिण्ण सव्व दुक्खा**=सम्पूर्ण दु:ख का अतिक्रमण, **जाइ जरा मरण बंधण विमुक्का**=जन्म, वुढापा, मृत्यु के वन्धनो से रहित **सासयं**=शाश्वत, **अव्वाबाह**=बाधा रहित, **सुक्खं अणुहोंती**=सुख का अनुभव करते है।

भावार्थ

शिव स्वरूप को सप्राप्त सिद्ध देव समस्त दुखो के कारणो से रहित होने से, जन्म जरा-मृत्यु के बन्धनो से रहित हो जाने से नित्य स्थायी निर्विघ्न सुख का सदाकाल अनुभव करते है।

अउल सुह सागर गया, अव्वा बाहं अणोवमं पत्ता।
सव्व-मणागय-मद्धं, चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥22 ॥

अन्वयार्थ

अउल सुह सागर गया=अनुपम सुह सागर को प्राप्त, **अणोवमं अव्वाबाहं**=अनुपमेय निर्विघ्नता, **पत्ता**=प्राप्त, **सुहं पत्ता**=सुख प्राप्त किए, **सव्वं अणागयं अद्धं**=समस्त भविष्य काल तक, **चिट्ठंति**=रहते है।

भावार्थ

अतुलनीय सुख सागर मे निमग्न बने वे सिद्ध भगवन्त बाधा रहित अनुपम सुख का सिद्ध क्षेत्र मे अनन्तानन्त काल तक भोग करते हुए सुखी रहते है।

☐

पुच्छिस्सुणं (वीर स्तुति)

पुच्छिस्सु णं समणा माहणा य,
आगारिणो या परतित्थिया य।
से केइ णेगत हियं धम्म-माहु
अणेलिसं साहु समिक्खयाए ॥1 ॥

अन्वयार्थ

समणा=श्रमणो, **य माहणा**=और ब्राह्मणो, **अगारिणो**=गृहस्थो, **पर तित्थिया य**=और परतीर्थिको ने, **पुच्छिस्सु**=पूछा कि, **से केइ**=वह कौन है, **णेगंतहियं**=एकान्त हितकर, **अणेलिसं साहु**=अनुपम श्रेष्ठ, **धम्मं**=धर्म को, **सम्मिक्खयाए**=सम्यक् प्रकार से विचार कर, **आहु**=कहा।

भावार्थ

श्रमण, ब्राह्मण, क्षत्रियादि गृहस्थ और शाक्य आदि अन्य मतावलम्बी लोगो ने पूछा कि वे कौन है जिसने एकान्त रूप से आचरण योग्य हितकर श्रुत-चरित्र रूप अनुपम श्रेष्ठ धर्म का कथन सम्यक् रूपेण किया।

कहं च णाणं कहं दंसणं से,
सीलं कहं णाय सुयस्स आसी।
जाणासि णं भिक्खु! जहा तहेणं,
अहा सुयं बूहि जहा णिसंतं ॥2 ॥

अन्वयार्थ

से णाय सुयस्स=उस ज्ञात पुत्र का, **णाणं कहं**=ज्ञान कैसा था?, **कहं दंसण**=दर्शन कैसा था, **सीलं कहं आसी**=यम नियम रूप आचरण कैसा था?, **भिक्खु**=हे भिक्षु, **जहा तहेणं जाणासि**=जैसा उनको जानते हो, **अहा सुयं**=जैसा सुना है, **जहा णिसंतं**=जैसा निश्चय किया, **बूहि**=कहिये।

भावार्थ

हे गुरुवर्य! क्षत्रिय कुल-आभूषण श्रमण भगवान महावीर स्वामी का वस्तु के विशेष धर्मो को जानने का बोध-ज्ञान कैसा था? सामान्य धर्मो को जानने वाला उपयोग-दर्शन कैसा था? उनका यम नियम रूप शील कैसा था? हे

भगवन्! यह आप यथार्थ रूप मे जानते हो, उनके बारे मे जैसा सुना हो, अथवा गुरुकुल मे रहते आपने जैसा देखा हो, उसे अनुग्रह कर मुझे कहिए।

खेयण्णए से कुसले महेसी,
अणंत णाणी य अणंत दंसी।
जसंसिणो चक्खु पहे ठियस्स,
जाणाहि धम्मं च धिइं च पेहि ॥3॥

अन्वयार्थ

से खेयन्नए=वे संसार के दु खो को जानने वाले थे, **कुसले महेसी**=निपुण महर्षि थे, **अणंत णाणीय अणंत दंसी**=अनन्त ज्ञानी और अनन्त दर्शी थे, **जसंसिणो**=यशस्वी, **चक्खु पहे ठियस्स**=लोचन मार्ग पर स्थित, **धम्मं जाणाहि**=धर्म को जानो, **धिइं च पेहि**=और धैर्य को देखो-विचारो।

भावार्थ

श्रमण भगवान महावीर स्वामी कर्मो के फलस्वरूप उत्पन्न होने एव चतुर्गति ससार परिभ्रमण के दुःखो को जानने वाले थे तथा कर्मो को हटाने, निवारण के उपदेश मे निष्णात थे तपश्चरण करने एवं परीषहोपसर्गो को सहने से महर्षि थे। वे अविनाशी ज्ञानवान् थे, अनन्तदर्शी थे, नरेन्द्रो, देवेन्द्रो और असुरेन्द्रो से बढकर यशस्वी थे, भवस्थ केवली अवस्था मे लोक के चक्षु पथ पर स्थित थे। उनके श्रुत एव चारित्र धर्म को जानो एव उनके धैर्य को देखो।

उऽड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु,
तसा य जे थावर जे य पाणा।
से णिच्च णिच्चेहिं समिक्ख पण्णे
दीवेव धम्मं समियं उदाहु ॥4॥

अन्वयार्थ

उड्ढं अहेयं तिरियं=ऊपर नीचे तिरछे, **दिसासु**=दिशाओ मे, **तसा य जे**=जो त्रस और, **थावर जे य पाणा**=स्थावर जो प्राणी रहते है, **णिच्च णिच्चेहिं**=नित्य और अनित्य से, **सम्मिक्ख**=सम्यक् प्रकार से जानकर, **से पन्ने**=उन प्रज्ञा पुरुष ने, **दीवेव**=दीपक वत्, **समियं**=समतामय, **धम्मं**=धर्म का, **उदाहु**=कथन किया है।

भावार्थ

उर्ध्व, अध· और तिर्छी दिशाओ मे जो भी त्रस और स्थावर प्राणी है उनकी नित्य और अनित्य उभय अवस्थाओ को सम्यक् तया जानकर पदार्थो के यथार्थ

स्वरूप को प्रकाशित करने से दीपक सदृश थे। ससार मे डूबते हुए समस्त प्राणियो के लिए द्वीप के समान रक्षक थे। उन्होने श्रुत और चारित्र धर्म की प्ररूपणा समभाव से की।

से सव्व दसी अभिभूय णाणी
णिराम गंधे धिइम ठियप्पा।
अणुत्तरे सव्व जगसि विज्जं
गंथा अइए अभए अणाऊ॥5॥

अन्वयार्थ

से सव्वदसी=वह सर्वदर्शी, अभिभूय णाणी=अपराजेय ज्ञान वाले, णिराम गंधे=मूल गुण और उत्तर गुण की विशुद्ध पालना करने वाले, धिइमं=धैर्यवान, ठियप्पा=आत्म स्वरूप मे रहने वाले, सव्व जगंसि=अखिल विश्व मे, अणुत्तरे विज्जं=सिर्वोत्तम विद्वान, गंथा अइए=ग्रन्थियो से रहित, अभए=निर्भय, अणाउ=आयु से रहित।

भावार्थ

श्रमण भगवान् महावीर सर्वदर्शी, केवल ज्ञानी थे मूलगुणो अरु उत्तर गुणो के विशुद्ध पालक थे, परम धैर्यवान् आत्मस्वरूप मे रमण करने वाले थे। अखिल विश्व मे सर्वोत्तम ज्ञानी तथा बाह्य आभ्यन्तर ग्रन्थियो से रहित थे, समग्र भयो से रहित और चतुर्विध आयु से विमुक्त थे।

से भूइ पण्णे अणिए आचारी,
ओहतंरे धीरे अणत चक्खू।
अणुत्तरं तप्पइ सूरिए वा,
वइ रोयणिंदे व तम पगासे॥6॥

अन्वयार्थ

से भूइ पण्णे=वे अनन्त ज्ञानी, अणिए आचारी=इच्छानुसार विचरण करने वाले, ओहंतरे=ससार सागर तरने वाले, धीरे=धैर्यवत, अणंत चक्खू=अनन्त दर्शनवान्, सूरिए व=सूर्य की तरह, अणुत्तरं=सर्वाधिक, तप्पई=तपता है, वइ रोयणिन्दे व=अग्नि सदृश, तम पगासे=अन्धकार से प्रकाश करने वाले है।

भावार्थ

श्री महावीर स्वामी अनन्त ज्ञानी, अप्रतिबद्ध विहारी, ससार सागर से तिरने वाले, धैर्यवान, अनन्त दर्शनधारी, सर्य के समान प्रकाशवान हो तप रहे थे। है

अग्नि के समान अज्ञान अन्धकार को नष्ट कर पदार्थो को यथार्थ रूप मे प्रकाशित करते थे।

अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं
णेया मुणी कासव आसुपण्णे
इंदेव देवाण महाणुभावे
सहस्स णेया दिविणं विसिट्ठे ॥7 ॥

अन्वयार्थ

आसुपण्णे=शीघ्र बुद्धि वाले, **कासव**=काश्यप गोत्रिय, **मुणी**=मुनि, **जिणाणं**=जिनवरो के, **इणं अणुत्तरं**=इस सर्व श्रेष्ठ, **धम्मं णेया**=धर्म के प्रणेता है, **दिविणं**=स्वर्ग लोक मे, **सहस्स देवाणां**=हजारो देवताओ का, **इंदेव**=इन्द्र नेता है, **महाणुभावे विसिट्ठे**=महान प्रभावशाली है।

भावार्थ

शीघ्र पारगामी तीक्ष्ण बुद्धि वाले, काश्यप गौत्रवान् मुनि श्री वर्धमान स्वामी ऋषभादि जिनेश्वर भगवतो के इस सर्वश्रेष्ठ धर्म के आद्य प्रणेता है। जिस तरह देवलोक मे हजारो देवताओ का नेता इन्द्र महान प्रभावशाली, सर्वश्रेप्ठ होता है उसी प्रकार भगवान महावीर त्रिलोक मे सर्वोत्तम श्रेष्ठ, अद्वितीय महाप्रभावक है।

से पण्णया अक्खय सागरे वा,
महोदही वावि अणंत पारे
अणाइले वा अकसाइ मुक्के
सक्केव देवाहि वई जुइमं ॥8 ॥

अन्वयार्थ

से सागरे वा=वे श्रमण भगवान महावीर समुद्र सदृश, **पण्णया-अक्खय**=प्रज्ञा से अक्षय, **महोदही वावि**=स्वयं भू रमण समुद्र वत, **अणंत पारे**=असीम सामर्थ्यवान, **अणाइले वा**=निर्मल मतिमान्, **अकसाइ**=कपाय से रहित, **मुक्के**=सयोगो से विमुक्त, **सक्केव**=शक्रेन्द्र की तरह, **देवाहि वई**=देव के अधिपति, **जुइमं**=अत्यन्त तेजस्वी है।

भावार्थ

भगवान महावीर प्रज्ञा से समुद्र के समान अक्षय है, स्वयंभू रमण समुद्र सदृश अपार-अप्रतिहत प्रज्ञानिधि है, वह प्रज्ञा अत्यन्त निर्मल, निप्कपाय और

द्रव्य आर भाव सयोगो से सर्वथा विनिर्मुक्त आंर देवो के अधिपति इन्द्र सम अत्यन्त तेजस्वी है।

से वीरिएणं पडिपुण्ण वीरिए
सुदंसणे वा णग सव्व सेट्ठे।
सुरालए वासि मुदागरे से,
विरायए णेग गुणोव-वेए ॥9 ॥

अन्वयार्थ

से=वे वर्धमान स्वामी, **वीरिएणं**=आत्म बल से, **पडिपुण्ण वीरिए**=पूर्ण शक्ति सम्पन्न, **सुदंसणे वा**=जिस प्रकार सुमेरु, **णग-सव्व-सेटठे**=सब पर्वतो मे श्रेष्ठ, **सुरालये**=देव लोक मे, **वासि**=रहने वालो को, **मुदागरे**=हर्षित करने वाले, **णेग गुणो-ववेए**=अनेक गुणो से युक्त होकर, **विरायए**=सुशोभित होता है।

भावार्थ

वीर्यान्तराय कर्म का समूल उच्छेद करने से श्री वर्धमान स्वामी आत्मबल से परिपूर्ण शक्ति सम्पन्न है, सब पर्वतो मे सुमेरु पर्वत प्रधान है उसी प्रकार सर्व दर्शनो मे जिन दर्शन सर्वश्रेष्ठ है। जैसे देवलोक मे रहने वालो को देवलोक हर्षजनक है वैसे ही वीर जिनेश्वर अनेक गुणो से सम्पन्न होने से अखिल विश्व को अपने गुणो से आनन्द देने वाले है, अच्छे प्रीतिकर लगते है।

सयं सहस्साण उ जोयणाणं,
तिकडगे पंडग वेजयंते।
से जोयणे णव णवइ सहस्से,
उद्धुस्सिओ हेट्ठ सहस्समेगं ॥10 ॥

अन्वयार्थ

सय सहस्साण=सो हजार, **उ जोयणाणं**=योजन की ऊँचाई वाला है, **तिकडगे**=तीन विभाग है, **पंडग वेजयंते**=पण्डक वन ध्वजा के समान है, **से**=वह सुमेरु पर्वत, **णव-णवइ सहस्से**=निन्यानवे हजार, **जोयणे**=योजन, **उद्धुस्सिओ**=ऊपर की ओर ऊँचा, **सहस्स एगं हेट्ठ**=एक हजार योजन भूमि भाग मे है।

भावार्थ

वह सुमेरु पर्वत एक लाख योजन ऊँचा है, इस के भौम, जम्बूनद और वैडूर्य ये तीन विभाग है वहाँ पताका रूप से पण्डक वन है, वह सुमेरु पर्वत

निन्यानवे हजार योजन पृथ्वी के ऊपर और एक हजार योजन पृथ्वी के अधोभाग मे है। ऐसा सुमेरु पर्वत सब पर्वतो मे प्रधान-श्रेष्ठ है।

पुटठे णभे चिट्ठइ भूमि वट्ठिए,
जं सूरिया अणुपरि वट्टयंति।
से हेम वण्णे बहु णंदणे य,
जंसि रइं वेदयंइ महिंदा ॥11 ॥

अन्वयार्थ

से पुट्ठे नभे=वह स्पर्श किया हुआ आकाश को, भूमि वट्ठिए=पृथ्वी पर स्थित, चिट्ठइ=रहता है, जूं सूरिया=जिस मेरु को सूर्य, परिवट्टयंति=परिक्रमा करते है, हेम वण्णे=सुवर्ण वर्ण वाला, बहु णंदणे य=अनेक नदन वन से युक्त, जंसि=जिस मेरु पर, महिंदा=महेन्द्र लोक, रइं वेदयइ=रति का अनुभव करते है।

भावार्थ

वह सुमेरु पर्वत आकाश को छूता है और भूमि के अन्दर रहा हुआ है, सूर्य आदि ज्योतिष उसकी परिक्रमा करते है वह स्वर्ण वर्ण वाला अनेक उद्यानो से युक्त है। महेन्द्र देव वहाँ आकर रमण का आनन्द लेते हैं। भूमि पर भद्रशाल वन है, उससे पाँच सौ योजन ऊँचाई पर मेखला की जगह नन्दन वन, उससे 62,500 (साढे बासठ हजार) ऊँचाई पर सौमनस वन और उससे 36,000 (छत्तीस हजार) योजन के शिखर पर पण्डक वन है।

से पव्वए सद्द महप्पगासे,
विरायइ कंचण-मट्ठ-वण्णे।
अणुत्तरे गिरिसु य पव्व दुग्गे
गिरिवरे से जलिए व भोमे ॥12 ॥

अन्वयार्थ

से पव्वए=वह पर्वत, सद्द महप्पगासे=शव्द महाप्रकाश नामो से सुप्रसिद्ध हें, कंचणं अट्ठवण्णे=कचन के सदृश शुद्ध वर्ण वाला, अणुत्तरे=सर्वश्रेष्ठ रूप मे, विरायइ=सुशोभायमान है, गिरिसु=पर्वतो मे, य पव्व दुग्गे=और पर्वतो से दुर्गम, से गिरिवरे=वह गिरि राज, भोमेव जलिए=भू प्रदेश जैसा प्रकाशित रहता है।

भावार्थ

वह सुमेरु पर्वत शब्दो से महान् प्रकाश वाला है, सुवर्ण के सदृश वर्ण वाला है, सर्वोत्तम श्रेष्ठता से सुशोभित है, वह सब पर्वतो के मध्य मे मेखलादि के कारण दुर्गम है वह मणियो और औषधियो से देदीप्यमान होने से भू-भाग की तरह प्रकाशमान है।

महीए मज्झम्मि ठिए णगिंदे,
पणायते सूरिए सुद्ध लेसे।
एव सिरीए उ स भूरि वण्णे
मणोरमे जोयइ अच्चिमाली ॥13 ॥

अन्वयार्थ

णगिंदे=वह पर्वताधिराज सुमेरु, **महीए मज्झम्मि ठिए**=पृथ्वी के मध्य मे स्थित है, **सुरिए सुद्ध लेसे**=सूर्यवत् शुद्धकाति वाला, **पण्णायते**=प्रतीत होता है, **एवं सिरीए**=इसी प्रकार वह अपनी सम्पदा से, **भूरि वण्णे**=अनेक वर्ण वाला, **मणोरमे**=मनोहर, **अच्चिमाली**=सूर्य सा, **जोयइ**=सब दिशाओ को प्रकाशित करता है।

भावार्थ

वह पर्वतराज सुमेरु पृथ्वी के मध्य मे रहा हुआ है, सूर्य के समान शुद्ध वर्ण वाला मालूम होता है, इस प्रकार वह अपनी सम्पदा-श्री से विविध वर्णमय एव मनोहर है, सूर्य की तरह सर्वदिशाओ का प्रकाशक है।

सुदंसणस्सेव जसो गिरिस्स,
पवुच्चई महतो पव्वयस्स।
एत्तोवमे समणे णायपुत्ते,
जाइ जसो दंसण णाण सीले ॥14 ॥

अन्वयार्थ

महतो पव्वयस्स=महान सुमेरु पर्वत का, **सुदंसण स्स गिरिस्स**=सुदर्शन गिरि का, **जसो पवुच्चई**=यश कहा जाता है, **इव**=इसी तरह, **समणे णाय-पुत्ते एतोवमे**=ज्ञात पुत्र श्रमण भगवान महावीर को इसी की उपमा दी जाती है, **जाइ जसो दंसण णाण सीले**=जाति यश दर्शन ज्ञान और शील मे श्रेष्ठ है।

भावार्थ

उस महान पर्वत सुदर्शन गिरि का यश पूर्वोक्त प्रकार से कहा गया है, उसी के समान ज्ञातपुत्र श्रमण महावीर है। वे वीर भगवान जाति से महान यश मे

अद्वितीय, दर्शन मे अनुपमेय, ज्ञान मे अनुत्तर और शील मे सर्वोत्तम है। सर्वप्रधान उपमा देने की दृष्टि से ही यहाँ सुमेरु का परिचय दिया गया है।

गिरिवरे वा निसहाऽऽययाणं,
रुयए व सेट्ठे वलयायताणं
तओवमे से जग भूइ पण्णे,
मुणीण मज्झे तमुदाहु पण्णे ॥15 ॥

अन्वयार्थ

आयाणं=लम्बे आकार वाले, **गिरिवरे**=पर्वतो मे श्रेष्ठ, **निसह व**=निषध प्रधान है, **वलयायताणं**=वर्तुल पर्वतो मे, **रुयए व**=जैसा रुचक पर्वत, **सेट्ठे**=श्रेष्ठ है, **जगभूइ पण्णे**=ससार मे अधिक बुद्धिमान को, **तओवमे**=वही उपमा है, **पण्णे**=बुद्धिमान, **मुणीण मज्झे**=मुनियो के मध्य मे, **तमुदाहु**=भगवान महावीर को श्रेष्ठ कहते है।

भावार्थ

जैसे दीर्घ आकार वाले पर्वतो मे गिरिराज निषध प्रधान है, अथवा गोलाकार पर्वतो मे रुचक पर्वत श्रेष्ठ है, उसी तरह ससार के समस्त ज्ञानवान मुनियो मे सर्वोत्तम प्रज्ञावान भगवान महावीर स्वामी है ऐसा बुद्धिमान पुरुषो ने कहा है।

अणुतरं धम्म-मुई रइत्ता
अणुत्तरं झाण वरं झियाइं
सुसुक्क सुक्कं अपगंड सुक्कं
संखिदु-एगंतवदात-सुक्कं ॥16 ॥

अन्वयार्थ

अणुत्तरं धम्म-मुई रइत्ता=सर्वोत्तम श्रुत-चरित्र धर्म को कहकर, **अणुत्तरं झाण वरं झियाइं**=सर्वोत्तम श्रेष्ठ ध्यान ध्याते थे, **सुसुक्क सुक्कं**=श्रेष्ठ शुक्ल वस्तुवत् शुक्ल था, **अपगंड सुक्कं**=दोष रहित शुल्क था, **संखिन्दु**=शख और चन्द्रमा वत्, **एगंतवदात सुक्कं**=एकान्त रूप से विशुद्ध शुक्ल।

भावार्थ

ज्ञात पुत्र श्रमण भगवान महावीर सर्वोत्तम श्रेष्ठ, श्रुत और चारित्र धर्म का निरूपण करके अनुत्तर ध्यान करते थे। उनका ध्यान अतीव शुक्ल वस्तु के समान शुक्ल, निर्दोष तथा शख अथवा चन्द्रमा के सदृश सर्वथा स्वच्छ और शुद्ध होता था।

अणुत्तरग्गं परमं महेसी
असेस कम्मं स विसोहइत्ता।
सिद्धिं गइं साइ-मणंतपत्ते,
नाणेण सीलेण य दंसणेण ॥17 ॥

अन्वयार्थ

स महेसी=वे महर्षि, नाणेण सीलेणं य दंसणेण=ज्ञान चरित्र और दर्शन से, असेस कम्मं=सम्पूर्ण कर्मो को, विसोहइत्ता=शोधन करके, अणुत्तरग्गं=सर्वोत्तम अग्र, परमं सिद्धिं=प्रधानसिद्ध, गईं=गति को प्राप्त हुए, साइ-मणंत पत्ते=जिसकी आदि है अन्त नही।

भावार्थ

महर्षि वीर जिनेश्वर ने ज्ञान, शील और दर्शन के द्वारा सम्पूर्ण कर्मो का विशोधन-क्षय करके सर्वोत्तम श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त की, जिसकी आदि तो है अन्त नही है।

रुक्खेसु णाए जह सामली वा
जंसि रइं वेदयइ सुवण्णा
वणेसु वा णंदण माहु सेट्ठं,
णाणेण सीलेण य भूइपण्णे ॥18 ॥

अन्वयार्थ

जह=जैसे, रुक्खेसु णाए=वृक्षो मे जगत्प्रसिद्ध, सामली वा=सेमल वृक्ष है, जंसि=जिस पर, सुवण्णा-सुपर्ण=भवन पति विशेष, रइं वेदयइ=आनन्द का अनुभव करते है, वणेसु वा णंदण सेट्ठ माहु=वनो मे सर्व श्रेष्ठ नन्दन वन कहा है, णाणेण सीलेण य भूइ पण्णे=ज्ञान और चरित्र से सर्वोत्तम श्रेष्ट महावीर स्वामी को कहते है।

भावार्थ

जैसे वृक्षो मे देवकुरु क्षेत्र मे रहा शाल्मली वृक्ष सर्वश्रेष्ठता के रूप मे प्रसिद्ध है, उन पर भवनपति देव सुपर्णकुमार रमण का आनन्द लेते है अथवा सम्पूर्ण वनो मे नन्दन वन सर्वोत्तम देवो का क्रीडा स्थल है उसी प्रकार जीवरक्षा की प्रमुख प्रज्ञा वाले भगवान महावीर ज्ञान शील मे सर्वोत्तम कहे जाते है।

थणियं व सद्दाण अणुत्तरे उ
चंदोव ताराण महाणुभावे

गंधेसु वा चंदण माहु सेट्ठं
एवं मुणीणं अपडिण्ण माहु ॥19 ॥

अन्वयार्थ

सद्दाण=शब्दो मे, थणियं=मेघ गर्जन, अणुत्तरे=प्रधान है और, ताराणं=ताराओ मे, महाणुभावे चंदो=महा प्रभावी चन्द्रमा श्रेष्ठ है, तथा गधेसु, चन्दणं सेट्ठं माहु=गधो मे चन्दन गन्ध श्रेष्ठ है, एवं=इसी प्रकार, मुणीणं=मुनियो मे, अपडिण्णमाहु=कामना विमुक्त भगवान महावीर श्रेष्ठ कहे जाते है।

भावार्थ

सम्पूर्ण शब्दो मे मेघगर्जन श्रेष्ठ है, समस्त नक्षत्रो मे प्रकाश वाला चन्द्रमा प्रधान और गन्ध वाले पदार्थो मे गोशीर्ष चन्दन प्रधान है, उसी प्रकार मुनियो मे निःस्पृह निराकांक्षी महावीर को बुद्धिमान लोग सर्वश्रेष्ठ कहते है।

जहा सयंभू उदहीण सेट्ठे
नागेसु वा धरणिंद-माहु सेट्ठे।
खोओदए वा रस वेजयंते,
तवो-वाहाणे मुणि वेजयंते ॥20 ॥

अन्वयार्थ

जहा उदहीण=जैसे समुद्रो मे, सयंभू सेट्ठे=स्वयभू रमण समुद्र श्रेष्ठ है, नागेसु धरणिंद सेट्ठे माहु=नाग कुमारो मे धरणेन्द्र को श्रेष्ठ कहते है, खोओदए वा रस वेजयंते=इक्षु रसोदक सव रसो मे श्रेष्ठ है, तवो वहाणे=विशिष्ट तप के कारण, मुणि वेजयंते=मुनि श्री भगवान महावीर सर्वश्रेष्ठ है।

भावार्थ

समुद्रो मे स्वयंभू रमण समुद्र श्रेष्ठ है, नाग कुमारो मे धरणेन्द्र प्रमुख है, इक्षु रसोदक समुद्र सर्व रसवानो मे श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त तपस्वियो मे श्रमण महावीर स्वामी सर्वश्रेष्ठ है।

हत्थीसु एरावण माहु णाए
सीहो मियाण सलिलाण गंगा
पक्खी सु वा गरुले वेणुदेवे
णिव्वाण-वादीणिह णाय पुत्ते ॥21 ॥

अन्वयार्थ

हत्थीसुणाए=हाथियो मे जगत्प्रसिद्ध, एरावणमाहु=ऐरावत हाथी को कहते है, मियाण सीहो=मृगो मे सिह, सलिलाण गगा=नदियो मे गगा, पक्खखीसु वा गरुले वेणुदेवे=पक्षियो मे वेणु देव गरुड श्रेष्ठ है, इह निव्वाण वादीण=इस ससार मे मोक्ष वादियो मे, णाय पुत्ते=ज्ञात पुत्र महावीर प्रधान है।

भावार्थ

इन्द्रवाहन रूप मे प्रसिद्ध ऐरावत हाथी समग्र हाथियो मे श्रेष्ठ है, पशुओ मे वनराज सिह प्रमुख है, नदियो के जलो मे गगा जल सर्वोत्तम है, पक्षियो मे वेणुदेव अर्थात् गरुड प्रधान है उसी प्रकार निर्वाणवादियो मे ज्ञात पुत्र भगवान महावीर सर्वश्रेष्ठ है।

जोहेसु णाए जह वीस सेणे,
पुप्फेसु वा जह अरविंद माहु
खत्तीण सेट्ठे जह दंतवक्के
इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे ॥22 ॥

अन्वयार्थ

जहा णाए=जैसे जग जाहिर, वीससेणे जाहेसु=विश्वसेना वासुदेव योद्धाओ मे, सेट्ठ=श्रेष्ठ है, जहा पुप्फेसु=जैसे फूलो मे, अरविंद माहु=कमल को प्रधान कहते है, जह खत्तीण=जैसे क्षत्रियो के मध्य मे, दंत वक्के=दन्त वक्र चक्रवर्ती श्रेष्ठ है, तह=उसी प्रकार, इसीण वद्धमाणे सेट्ठे=ऋषियो मे वर्धमान स्वामी श्रेष्ठ है।

भावार्थ

जैसे योद्धाओ मे वासुदेव जगत्प्रसिद्ध योद्धा है, जैसे पुष्पो मे कमल पुष्प प्रधान है, जैसे क्षत्रियो मे दान्त वाक्य चक्रवर्ती श्रेष्ठ है उसी प्रकार ऋषियो मे वर्धमान स्वामी प्रधान है।

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं,
सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति
तवेसु वा उत्तम बंभ चेरं,
लोगुत्तमे समणे णायपुत्ते ॥23 ॥

अन्वयार्थ

दाणाणं=समस्त दानो मे, **अभय-प्पयाणंसेट्ठं**=अभयदान श्रेष्ठ है, **सच्चेसु**=सत्य वचनो मे, **अणवज्जं वयंति**=पीडाकारी न हो उस सत्य वचन को श्रेष्ठ कहते हैं, **तवेसु**=तपो मे, **बंभचेरं उत्तम**=नव कोटि युक्त ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है, **समणे**=श्रमणो मे, **णायपुत्त**=ज्ञात पुत्र वर्धमान स्वामी, **लोगुत्तमे**=संसार मे सर्वोत्तम है।

भावार्थ

जगत् के सर्वदानो मे सर्वश्रेष्ठदान अभयदान है, समस्त सत्य वाक्यो मे दु.ख न पहुँचाने, घात न करने वाला वाक्य श्रेष्ठ है तपो मे नव बाड सहित ब्रह्मचर्य का पालन करना श्रेष्ठ तप है उसी प्रकार ज्ञात पुत्र भगवान महावीर तीन लोक मे सर्वोत्तम है।

ठिईण सेट्ठा लव सत्तमा वा,
सभा सुहम्मा व सभाण सेट्ठा।
निव्वाण सेट्ठा जह सव्व धम्मा,
ण णाय पुत्ता परमत्थि णाणी ॥24 ॥

अन्वयार्थ

ठिईण=स्थिति वालो मे, **लव सत्तमा**=पॉच अणुत्तर विमानवासी देव, **सेट्ठा**=श्रेष्ठ है, **सभाण**=सब सभाओ मे, **सुहम्मा सभा सेट्ठा**=सुधर्मा सभा श्रेष्ठ है, **जह सव्व धम्मा**=जैसे सर्वधर्मो मे, **निव्वाण सेट्ठा**=मोक्ष श्रेष्ठ है, **ण णाय पुत्ता परमत्थि णाणी**=ज्ञात पुत्र महावीर स्वामी से कोई श्रेष्ठ ज्ञान वान् नही है।

भावार्थ

जितने भी स्थिति वाले है उनमे पॉच अनुत्तर विमानो मे रहने वाले देव सर्वोत्कृष्ट स्थिति वाले है, समस्त सभाओ मे सुधर्मा सभा अनेक क्रीडा स्थलो से सम्पन्न होने से श्रेष्ठ है, जैसे सभी धर्मो-कुप्रावचनिक भी अपने दर्शन को निर्वाण प्रदाता कहते है। अत. निर्वाण श्रेष्ठ है, इसी प्रकार ज्ञात पुत्र से श्रेष्ठ कोई ज्ञानवान नही है।

पुट्ठो वमे धुणइ विगय गेही
न सण्णिहिं कुव्वइ आसु पण्णे।
तरिउं समुद्दं व महाभवोघं,
अभयंकरे वीर अणंत चक्खू ॥25 ॥

अन्वयार्थ

पुढोवमो=पृथ्वी के समान, सबके आधार भूत, **धुणइ**=कर्म मल को दूर करने वाले, **विगय गेही**=अनासक्त है, **आसु पण्णे**=शीघ्र बुद्धि वाले, **ण सण्णिहिं कुव्वइ**=न सग्रह करते है, **समुद्दे व**=सागर वत्, **महाभवोघं**=विशाल ससार को, **तरिउं**=पार कर गये, **अभयंकरे**=प्राणियो को अभयदाता, **वीर**=महावीर जिनेश्वर, **अणत चक्खू**=अनन्त दर्शन वाले है।

भावार्थ

भगवान महावीर सर्वप्राणियो के लिए पृथ्वी के समान आधारभूत है, अष्ट प्रकार के कर्मदल समूह को नष्ट करने वाले है, गृद्धि भाव से सर्वथा रहित है, सर्वत्र सर्वदा उपयोगवान है, किसी भी वस्तु की सन्निधि नही करते है, महाभयकर जन्म मरण रूप ससार सागर को तैर कर पार हुए है, चरम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त हो गए है, अभयकर है और अनन्त ज्ञान-दर्शन सम्पन्न है।

कोहं च माणं च तहे व मायं
लोहं चउत्थं अज्झत्थ दोसा
एयाणि वंता अरहा महेसी,
न कुव्वइ पावं ण कारवेइ ॥26 ॥

अन्वयार्थ

अरहा महेसी=अरिहत महर्षि, **कोहं च माणं च तहेव मायं**=क्रोध मान और माया तथा उसी प्रकार, **चउत्थं लोहं**=चौथे लोभ रूप, **एयाणि**=इन, **अज्झत्थ दोसा**=अध्यात्म दोषो को, **वंता**=छोड करके, **ण पावं कुव्वइ**=न पाप करते है, **न कारवेइ**=न करवाते है।

भावार्थ

अर्हन महर्षि महावीर क्रोध, मान, माया और चौथे लोभ कषाय रूप आत्मा को विकृत करने वाली वैभाविक वृत्ति को त्याग करके चल रहे थे वे स्वय न पापमय प्रवृत्ति का सेवन करते थे और न पाप का सेवन करवाते थे।

किरिया-किरियं वेणइयाणु वायं,
अण्णाणियाणं पडियच्च ठाणं।
से सव्व वायं इइ वेयइत्ता,
उवट्ठिए संजम दीह रायं ॥27 ॥

अन्वयार्थ

किरिय-अकिरियं=क्रियावादी अक्रियावादी के मत को, **वेणइया-अणुवायं**=विनय वादी के कथन को, **अण्णाणियाणं**=अज्ञान वदियो के, **ठाणं**=मत को, **पडियच्च**=जानकर, **से इति**=उस वीर प्रभु ने इस प्रकार, **सव्व वायं**=सब वादियो के मत को, **वेयइत्ता**=जानकर के, **संजम दीह रायं**=सयम मे जीवन भर के लिए, **उवट्ठिए**=स्थित हुए है।

भावार्थ

क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी तथा अज्ञानवादियो के मत को जानकर, अर्थात् प्रतीति करके उस वीर प्रभु ने सभी वादो को जानकर जीवन पर्यन्त सयम भाव मे स्थिर हुए।

से वारिया इत्थी सराइभत्तं,
उवहाणवं दुक्ख खयट्ठयाए।
लोगं विदित्ता आरं परं च,
सव्वं प्रभू वारिय सव्व वारं ॥28 ॥

अन्वयार्थ

से प्रभू=उन प्रभु महावीर स्वामी ने, **सराइ भत्तं इत्थी वारिया**=रात्रि भोजन सहित स्त्री को छोडकरके, **दुक्ख-खयट्ठयाए**=दुखो को क्षय करने के लिए, **उवहाणवं**=तपस्या मे लगे थे, **आरं परं च लोगं विदित्ता**=इस लोक और परलोक को जानकर, **सव्व वारं सव्वं वारिया**=सब प्रकार के पापो को छोड दिया।

भावार्थ

प्रभु महावीर ने रात्रि भोजन के साथ-साथ स्त्री सेवन, संसर्ग का भी परित्याग कर दुःखो को क्षय करने के लिए तपश्चर्या मे लग गए। इस लोक और परलोक तथा इनके कारणो को जानकर के समस्त पापकर्मो का पूर्णरूपेण त्याग कर दिया था।

सोच्चा य धम्मं अरहंत भासियं,
समहियं अट्ठ-पओव सुद्धं।
तं सद्दहणा य जणा अणाऊ,
इंदेव देवाहिव आगमिस्संति ॥29 ॥

अन्वयार्थ

अरहंत भासियं=अरिहत देव द्वारा कथित, **समाहिय**=युक्ति युक्त, **अट्ठ-पओव-सुद्धं**=अर्थ और पदो से पूर्ण शुद्ध, **धम्मं सोच्चा**=धर्म को सुनकर **तूं सदद हणा**=उनमे श्रद्धान रखने वाले, **जणा**=मनुष्य, **अणाउ**=आयु कर्म रहित होकर मोक्ष को पाते है, **वा इदेव**=अथवा वे इन्द्र सदृश **देवाहिव**=देवताओ के अधिपति, **आगमिस्संति**=होते है।

भावार्थ

अरिहत प्रभु द्वारा प्रतिपादित युक्ति-युक्त, अर्थ और पद दोनो दृष्टियो से निर्दोष धर्म को सुनकर उस पर जो श्रद्धा रखते है वे भव्य जनआयुकर्म से रहित होकर मुक्ति को पाते है अथवा इन्द्र के समान देवताओ के स्वामी बनते है।

□

श्री तिजय-पहुत स्तोत्र

तिजय-पहुत्त पयासय-अट्ठ महापाडिहेर जुत्ताणं।
समयक्खित्त ठियाणं, सरेमि चक्कं जिणंदाणं ॥1 ॥

अन्वयार्थ

तिजय=तीन जगत के, **पहुत्त**=समर्थ, **पयासय**=प्रकाशक, **अट्ठ महा पाडिहेर**=आठ महा प्रातिहार्यो, **जुत्ताणं**=सहित, **समय-क्खित**=मनुष्य क्षेत्र मे, **ठियाणं**=रहे हुए, **सरेमि**=स्मरण करता हूँ, **चक्कं जिणंदाणं**=जिनेन्द्रो के समूह को।

भावार्थ

स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक को प्रकाशित करने मे समर्थ, अष्ट महा प्रातिहार्यो सहित, मनुष्य क्षेत्र विशेष मे रहे हुए जिनेन्द्रो के समूह विशेष का स्मरण करता हूँ।

पणवीसा य असीआ, पनरस-पन्नास-जिणवर समूहो
नासेउ सयल दुरियं, भवियाणं भत्ति जुत्ताणं ॥2 ॥

अन्वयार्थ

पणवीसा=पच्चीस, **य असीआ**=और अस्सी, **पनरस**=पद्रह, **पन्नास**=पचास, **जिणवर समूहो**=जिनेश्वर देवो का समूह, **भत्ति जुत्ताणं**=उपासना मे सलग्न, **भविआण**=भव्यो के, **सयल दुरियं**=सम्पूर्ण पाप वासनाओ को, **नासेऊ**=नष्ट करे।

भावार्थ

25, और 80, 15, 50 इस तरह एक सौ सित्तर तीर्थकर देवो का समूह सेवा-भक्ति मे सलग्न भव्यजीवो के समस्त पापकर्मो को नष्ट करे।

बीसा पणयाला वि य, तीसा पन्नत्तरी जिणवरिंदा।
गह-भूअ-रक्ख साइणि घोरुवसग्गं पणासंतु ॥3 ॥

अन्वयार्थ

बीसा=बीस, **पणयाला य**=और पैंतालीस, **तीसा**=तीस, **पन्नत्तरी**=पचहत्तर, **जिणवरिंदा**=जिनेन्द्र, **ग्रह**=मगलादि ग्रहो, **भूअ**=भूत, **रक्ख-साइणि**=राक्षस और शाकिनियो के, **घोरु वसग्गं**=घोर उपसर्गो को, **पणासंतु**=नष्ट करे।

भावार्थ

20, 45, 30 और 75 इस तरह एक सौ सित्तर जिनेन्द्र भगवान् मगल आदि ग्रहो, भूतो, राक्षसो और शाकिनियो से उत्पन्न भयकर दु खो का नाश करे।

सत्तरि पणतीसा वि य, सट्ठी पंचेव जिणगणो एसो
वाहि जल जलण हरि करि, चोरारि महाभयं हरउ ॥4 ॥

अन्वयार्थ

सत्तरि=सत्तर, **पणतीसा वि य**=और पैतीस, **सट्ठी**=साठ, **पंचेव**=पॉच, **जिणगणो**=जिनेश्वरो का समूह, **ऐसो**=यह, **वाहि-जल-जलण-हरि-करि**=व्याधि, जल, अग्नि, सिह, हस्ती, **चोरारि महाभयं**=चोर और शत्रुओ के महाभय को, **हरउ**=हरण करे।

भावार्थ

70, 35, 60 और पॉच इस तरह एक सौ सत्तर जिनेन्द्रो का समूह, रोग, जल, अग्नि, सिह, हाथी, चोर और शत्रुओ के महाभय को हरण करे।

पणपन्ना य दसेव य, पणट्ठी तह य चेव चालीसा।
रक्खंतु में सरीरं, देवासुर-पणमिया सिद्धा ॥5 ॥

अन्वयार्थ

पणपन्ना=पचपन, **य दसेव**=और दस, **पन्नट्ठी**=पैसठ, **य तह चालीसा**=और तथा चालीस, **देवासुर य**=देवता और असुरो से, **पणमिया**=नमस्कृत, **सिद्धा**=सिद्ध, **मे सरीरं**=मेरे शरीर का, **रक्खंतु**=रक्षण करे।

भावार्थ

55, 10, 65 और 40 इस तरह एक सौ सत्तर देवाधि देव जिनवर जो देवो और देत्यो से नमस्कार किये हुवे तथा सिद्ध वने जिनेन्द्र प्रभु मेरे शरीर का सरक्षण करे।

ॐ हर हुॅ ह सर सुं स, हर हुॅ ह तह य चेव सर सुं स
आलिहिय नाम गब्भ, चक्कं किर सव्वओ भद्द ॥6 ॥

अन्वयार्थ

ॐ=परमेष्ठी वाचक, **हर हुॅ ह**=इनसे पद्मा,जया विजया, अपराजिता का ग्रहण, **तह सर सुं स**=ये चार बीजा क्षर उपसर्ग निवारण हेतु, इन सोलह ह-2, हुॅ-2, स-2, सु स ह-2 हुॅ ह, ओर स र सु स बीच के अक्षरो को छोड

अनुकम से, आलिहिय=लिखना, नाम गब्भ=नाम के साथ, चक्कं=चक्र, किर निश्चय ही, सव्वओ भद्दं=सर्वत्तोभद्र को।

भावार्थ

ॐ परमेष्ठि वाचक है ह र हुँ ह से पद्मा जया, विज या अपराजिता इन देवियो को ग्रहण किया है। स र सु स इन चार बीजाक्षरो को उपसर्ग हरने के लिए ग्रहण किया है। ये सोल ह अक्षर ह-2, हुँ-2, स-2 सुं स ह र हुँ ह और स र सु सः इन बीच के खानो को छोडकर यंत्र को अनुक्रम से लिखना और साधन करने वाले का नाम ॐ के साथ यत्र मे लिखना। यह सर्वतोभद्र नामक यंत्र समझना।

ॐ रोहिणि पन्नति, वज्जसिंखला तह य वज्जंकुसिया
चक्केसरि नरदत्ता, कालि महाकालि तह य गौरी ॥7॥
गंधारी मह जाला, माणवि वइरुट्ट तह य अच्छत्ता।
माणसि महामाणसिया, विज्जा देवीओ रक्खंतु ॥8॥

अन्वयार्थ

ॐ रोहिणी=रोहिणी, **पन्नति**=प्रज्ञप्ति, **वज्जसिं खला**=वज्र शृंखला, **तहय वज्जंकुसिया**=तथा और वज्राकुशी, **चक्केसरि**=चक्रेश्वरी, **नरदत्ता**=नरदता, **कालि**=काली, **महाकाली**=महाकाली, **तह**=तथा, **गौरी**=गौरी।

गंधारी=गॉधारी, **महजाला**=महाज्वाला, **माणवि**=मानवी, **वइरुट्ट**=वैरोट्गा, **तह य अच्छुत्ता**=तथा और अच्छुप्ता, **माणसि**=मानसी, **महामाणसिया**=महामानसिक, **विज्जादेवीओ**=विद्यादेविएँ, **रक्खंतु**=रक्षण करे।

भावार्थ

ॐ ही श्री इन तीन बीजाक्षरो के साथ यत्र मे उपर्युक्त सोलह विद्या देवियो के नाम भी लिखना चाहिए।

पंचदस कम्मभूमिसु, उप्पन्नं सत्तारि जिणाण सयं।
विविह रयणाइवण्णोव, सोहियं हरउ दुरियाइं ॥9॥

अन्वयार्थ

पंचदस=पन्द्रह, **कम्म-भूमिसु**=कर्मभूमि मे, **उवन्नं**=उत्पन्न, **सत्तरिसयं जिणाणं**=एक सौ सत्तर जिनेश्वरो का, **विविह**=विविध, **रयणाइ-वन्नो**=रत्न वर्गो से, **सोहियं**=शोभायमान, **हरउ दुरियाइं**=हरण करे पापो को।

भावार्थ

पन्द्रह कर्मभूमि क्षेत्र मे उत्पन्न एक सौ सत्तर तीर्थंकर अनेक रत्नो के वर्ण से शोभायमान हो रहे है वे पापकर्मो को नष्ट करे।

चउतीस अइसय-जुआ, अट्ठ महापाडिहेर-कय सोहा
तित्थअरा गय मोहा, झाएयव्वा पयत्तेणं ॥10 ॥

अन्वयार्थ

चउतीस=चौतीस, **अइसय जुआ**=अतिशयो से युक्त, **अट्ठ महापाडिहेर**=आठ महाप्रातिहार्यो से, **कय**=किये, **सोहा**=शोभायमान, **तित्थयरा गयमोहा**=मोह रहित तीर्थंकर प्रभु को, **झाएयव्वा-पयत्तेण**=ध्याना चाहिए प्रयत्न करके।

भावार्थ

चौतीस अतिशयो से सम्पन्न, आठ महाप्रातिहार्यों से शोभायमान है तथा मोह रहित तीर्थंकर महाप्रभु का ध्यान चेष्टा रखते हुए करना चाहिए।

ॐ वर कणय संख-विद्दुम मरगय घण सन्निह विगयमोहं
सत्तारिसयं जिणाणं, सव्वामर पूइयं वंदे स्वाहा ॥11 ॥

अन्वयार्थ

ॐ वर कणय=श्रेष्ठ कनक, **संख**=सख, **विद्रुम**=प्रवाल, **मरगय**=पन्ना, **घण**=मेघ, **सन्निह**=सदृश, **विगयमोहं**=मोह रहित, **सत्तरि सय जिणाणं**=एक सौ सत्तर जिनेन्द्रो को, **सव्वामर-पूइअं**=सब देवताओ से पूजित, **वदे**=नमस्कार हो स्वाहा !

भावार्थ

श्रेष्ठ स्वर्ण सख, प्रवाल, पन्ना, मेघ के समान है, मोहरहित है, जो देवताओ से पूजित है, ऐसे एक सौ सत्तर जिनेन्द्र भगवन्तो को मै ॐकार सहित नमस्कार करता हूँ।

ॐ भवणवइ-वाणवंतर, जोइसवासी विमाणवासी य
जे केवि दुट्ठ देवा, ते सव्वे उवसमंतु मम स्वाहा ॥12 ॥

अन्वयार्थ

ॐ=परमेष्ठि वाचक, **भवणवइ**=भवनपति, **वाणवंतर**=वाण-व्यन्तर, **जोइसवासी विमाणवासी** अ=ज्योतिषी और वैमानिक देवो मे रहने वाले, जे

कि वि=जो कोई भी, दुट्ठ देवा=दुष्ट देव, ते सव्वे=वे सब, उवसमंतु=उपशान्त होवे, मम=मेरे। स्वाहा।

भावार्थ

भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक आदि जो कोई दुष्ट देव हो वे सब मेरे प्रति शान्त होवे।

चन्दण कप्पूरेणं, फलए लिहि-ऊण खालिअं पीअं
एगंत राइ गह भूअ साइणि मुग्गं पणासेइ ॥13॥

अन्वयार्थ

चंदण कपूरेणं=चन्दन, कपूर से, फलए=काष्ठ पट पर, लहिऊण=लिख करके, खालिअं=धोया हुआ, पीअं=पीने से, एगतराइं=एकान्तर ज्वर, गह-भूअ-साइणि-मुग्गं=ग्रह पीडा, भूत, शाकिनी, रोग विशेष, पणासेइ=नष्ट होते है।

भावार्थ

चन्दन कपूर से काष्ट फलक या काँसे के थाल पर लिखकरके उसे छाया मे सूखा धोकर पीये तो एकान्तर ज्वर, ग्रह, भूत, शाकिनी की उग्र पीडा का रोग विशेष नष्ट हो जाते है।

इय सत्तरि सयं जंतं, सम्मं मंतं दुवारि पडिलिहियं।
दुरिआरि विजयवंतं, निब्भन्तं निच्च मच्चेह ॥14॥

अन्वयार्थ

इय=इस, सत्तरि सय=एक सौ सत्तर का, जंतं=यत्र, सम्मं मंतं=सम्यक् मत्र, दुवारि पडिलिहिअं=प्रवेश मार्ग पर लिखा हुआ, दुरिआरि=पाप और शत्रुओं, विजयवंतं=विजय दिलाने वाला है, निब्भंतं=नि:सदेह, निच्चमच्चेह=नित्य अर्चन करना चाहिए।

भावार्थ

यह एक सौ सित्तर तीर्थकरो का यत्र सम्यग्मंत्र है। इसे प्रवेश द्वार पर लिखने से पाप और शत्रुओ पर नि सदेह विजय प्राप्त होती है अत सदैव इसका अर्चन करना चाहिए॥

□

उपसर्ग हर स्तोत्र

उवसग्ग हरं पासं पासं वंदामि कम्म घण मुक्कं
विसहर विस निन्नासं मंगल कल्लाण आवासं ॥1 ॥

अन्वयार्थ

उवसग्ग हरं=उपसर्ग हर, पासं=पार्श्व यक्ष, कम्म घण=कर्म घन से, मुक्क=विमुक्त, विसहर विस=विषधर के विष को, निन्नासं=नष्ट करने वाले, मंगल-कल्लाणं=मगल और कल्याण के, आवासं=धाम, पासं=पार्श्वनाथ को, वंदामि=वन्दन करता हूँ।

भावार्थ

जिनकी सेवा मे पार्श्व यक्ष आदि रहे हुए उपसर्गो को दूर करते है। जो घन घाती कर्मो से रहित है, जिनके नाम स्मरण से भयकर सर्प का विष नष्ट हो जाता है, जो मगल और कल्याण का परम धाम है, उन पार्श्वनाथ प्रभु को वन्दन करता हूँ।

विसहर फुलिग मंतं, कण्ठे धारेइ जो सया मणुओ
तस्स गह रोग मारी, दुट्ठ जरा जति उवसामं ॥2 ॥

अन्वयार्थ

विसहर फुलिंग=विषधर स्फुलिग, मंतं=मत्र को, कण्ठे धारेइ=कण्ठ मे धारण करता है, जो सया=जो सदा, मणुओ=मनुष्य, तस्स=उसके, गह रोग मारी=ग्रह, रोग-मारी, दुट्ठ जरा=दुष्ट ज्वर, जति=प्राप्त होते है, उवसामं=उपशमन को।

भावार्थ

विषधर स्फुलिंग मत्र को जो सतत स्मरण करता है, कण्ठ मे धारण करता है। उसके ग्रह, व्याधि, महामारी, दुष्ट ज्वर शान्त हो जाते है।

चिट्ठउ दूरे मतो तुज्झ पणामो वि वहु फलो होइ।
नर तिरिएसु वि जीवा, पावंति न दुख दोहग्गं ॥3 ॥

अन्वयार्थ

चिट्ठउ=रहे, दूरे मतो=दूर मत्र, तुज्झ पणामो वि=तुझे किया प्रणाम भी, वहुफलो=वहुत फल वाला, होई=होता है, नर तिरिएसु वि=मनुष्य और तिर्यच

गति मे भी, जीवा=जीव, पावंति न=पाते नही, दुख दोहग्गं=दु.ख दौर्भाग्य को।

भावार्थ

हे भगवन्! आपका विषधर स्फुलिंग मंत्र तो दूर रहे आपको किया गया प्रणाम भी महाफल देता है। नर भव और तिर्यच गति मे भी दुख दुर्भाग्य उसे नही मिलता है।

तुह सम्मते लद्धे, चिन्तामणि कप्प-पायवब्भ हिए
पावंति अविग्घेणं, जीवा अयरामरं ठाणं ॥4॥

अन्वयार्थ

तुह सम्मत्ते=तुम्हारे सम्यत्त्व को, लद्धे=पाने पर, चिन्तामणि=चिन्तामणि, कप्प-पायवब्भ-हिए=कल्प वृक्ष से भी अधिक, पावंति=पाते है, अविग्घेणं=विघ्न-बाधा रहित, जीवा=जीव, अयरामरं=अजर-अमर, ठाणं=स्थान को।

भावार्थ

हे भगवन्! आपके सम्यत्त्व को पाकर चिन्तामणि और कल्प वृक्ष से अधिक फल प्रद अजर-अमर धाम को जीव पाते है।

ॐ अमर तरु काम धेणु, चिन्तामणि काम कुंभ माइए
सिरी पास नाह सेवा गयाण सव्वे वि दासत्तं ॥5॥

अन्वयार्थ

ॐ=परमेष्ठि मत्र सूचक, अमर तरु=देव वृक्ष, कामधेनु-चिन्तामणि-काम कुंभ=कामधेनु चिन्तामणि, काम कुभ, माइए=जैसी है, सिरी पास नाह सेवा=श्री पार्श्वनाथ सेवा, गहणे=स्वीकारने से, सव्वे वि दासत्तं=सभी दासत्व को।

भावार्थ

तीर्थकर देव श्री पार्श्वनाथ प्रभु की सेवा कल्प वृक्ष कामधेनु चिन्तामणि और काम कुभ जैसी है। प्रभु भक्त सेवक का सर्व जन भी दासत्व स्वीकारते है।

ॐ ह्रीं श्रीं ऐं ॐ, तुह दंसणेण सामिय,
पणासेई रोग सोग दोहग्गं।
कल्पतरु मिव जायइ, ॐ तुह दंसणेण सव्वफल हेउ स्वाहा ॥6॥

अन्वयार्थ

ॐ=परमेष्ठि बीजाक्षर, तेजो बीज, ह्रीं=माया या त्रिलोक्य बीज, श्री=लक्ष्मी बीज, ऐं=सरस्वती बीज, ॐ=सपुट रूप है, स्वाहा=शाति, पुष्टि कर्म ससूचक पल्लव है, **तुह दंसणेण सामिय**=हे स्वामिन। तुम्हारे दर्शन से, **रोग सोग दोहग्गं**=रोग शोक दुर्भाग्य, **पणासेइ**=नष्ट होता है, **कल्पतरु मिव**=कल्प वृक्ष की तरह, **तुह दंसणेण**=तुम्हारे दर्शन से, **सव्व फल**=सर्व मनोरथ फलने मे, **हेउ जायइ**=कारण बनता है।

भावार्थ

हे स्वामिन्! आपके दर्शन से रोग शोक दुर्भाग्य नष्ट होता है। हे करुणानिधे परमेश्वर! आपके दर्शन कल्प वृक्ष की भॉति साक्षात् सर्व मनोरथ को पूर्ण करने वाला बनता है।

ॐ ह्रीं नमिऊण पणव सहियं, माया बीएण धरण नागिदं
सिरी काम राय कलियं, पास जिणंदं नमंसामि॥7॥

अन्वयार्थ

नमिऊण=नमस्कार कर, **पणव सहियं**=ॐकार वाले, **माया बीएण**=ह्रींकार बीज से, **धरण नागिद**=नागराज धरणेन्द्र को, **सिरी कामराय कलियं**=कामदेव विजेता श्री, **पास जिणंदं**=पार्श्व जिनेन्द्र को, **नमंसामि**=नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ

पच परमेष्ठि और जिन तीर्थकर देवो को नमस्कार कर, विद्या शक्ति सम्पन्न धरणेन्द्र पद्मावती को स्मरण कर, त्रिलोक विजयी कामदेव विजेता श्री पार्श्व जिन वर को नमस्कार करता हूँ।

ॐ ह्रीं श्रीं पास विसहर, विज्जा मंतेण झाणं झाएज्जा।
धरणेंद पउमा वइ देवी, ॐ ह्रीं क्ष्म्ल्व्र्यूं स्वाहा॥8॥

अन्वयार्थ

ॐ ह्रीं श्री=मत्र सेतु, तेजो वीज, त्रैलोक्य वीज और लक्ष्मी वीज, **पास विसहर**=पार्श्व का विषहर, **विज्जा मंतेण**=विद्या मत्र का, **झाण झाएज्जा**=ध्यान करने से, **धरणेंद**=धरणेन्द्र, **पउमावइ देवी**=पद्मावती देवी, 'ॐ ह्रीं क्ष्म्ल्व्र्यूं स्वाहा' की आराधना करना।

भावार्थ

ॐ ह्री श्री पार्श्व जिन देव के विषहर मंत्र को ध्याने से एव धरणेन्द्र पद्मावत देवी के गाथोक्त चतुर्थ चरण वाले मत्राराधन से सर्व कार्य सफल होते है।

ॐ थुणामि पास नाहं, ॐ पणमामि परम भत्तीए।
अट्ठक्खर धरणिंदो, पदमावइ पयडिया कित्ती ।।9 ।।

अन्वयार्थ

ॐ थुणामि=परमेष्ठि के नमस्कार युत्त स्तुति करता हूँ, **पास नाहं**=पार्श्वना की, **ॐ पणमामि परम भत्तीए**=परमेष्ठि स्मरणपूर्वक अनन्य भक्ति से प्रणा करता हूँ, **अट्ठक्खर धरणिंदो**=आठ अक्षर वाले धरणेन्द्र, **पउमावइ**=पद्मावत **पयडिया कित्ती**=प्रत्यक्ष कीर्ति है।

भावार्थ

पच परमेष्ठि को नमस्कार कर पार्श्वनाथ भगवन् की स्तुति करता हूँ। पर श्रद्धा से नमस्कार करता हूँ, अष्टाक्षर वाले पार्श्व जिनेश्वर के शासन सरक्ष धरणेन्द्र पद्मावती की प्रत्यक्ष कीर्ति है।

ॐ नट्ठट्ठ मयट्ठाणे पणट्ठ कम्मट्ठ नट्ठ संसारे
परमट्ठ निट्ठि यट्ठे, अट्ठ गुणाधीसरं वंदे ।।10 ।।

अन्वयार्थ

ॐ नट्ठट्ठ=परमेष्ठि को नमन कर, नष्ट अष्ट, **मय ट्ठाणे**=मद स्थान, **पणट्ठ**=प्रनष्ट **कम्मट्ठ**=अष्ट कर्म, नष्ट, **संसारे**=ससार मे, **परमट्ठ**=परमार्थ, **निट्ठियट्ठे**=निष्ठित अर्थ, **अट्ठ गुणाधीसरं वंदे**=अष्ट गुणाधीश्वर को वन्दन करता हूँ।

भावार्थ

जिनके अष्ट मद स्थान और आठ कर्म संसार मे नष्ट होने से परम सिद्धि के चरम लक्ष्य अर्थ को साध चुके है। उन आठ गुणो के स्वामिन् को वन्दन करता हूँ।

इअ संथुओ महायस! भत्तिब्भर निब्भरेण हियएण।
ता देव! दिज्ज वोहिं भवे भवे पास जिणचंद! ।।11 ।।

अन्वयार्थ

इअ=इस प्रकार, **सथुओ**=सम्यक्तया सस्तुतित, **महायस**=महायशस्वी, **भत्तिब्भर निब्भरेण**=भक्ति से परिपूर्ण, **हिएयेण**=हृदय से, **ता देव**=हे देव, **दिज्ज बोहिं**=दे बोधि फो, **भवे भवे पास जिणचंद**=भव भव मे पार्श्व जिनचन्द्र।

भावार्थ

हे महायशस्वी । पार्श्व इस प्रकार सम्यक् तया भक्ति मे निमग्न होकर अन्तर्हृदय से विरदावली की। हे जिनेश्वर देव! भव-भव मे सम्यग्दर्शन रूप बोधि को दे।

□

श्री नमिऊण स्तोत्र

नमिऊण पणय सुरगण चूड़ामणि किरण रंजिअं मुणिणो
चलण-जुयलं महाभय पणासणं संथवं वुच्छं ॥1 ॥

अन्वयार्थ

नमिऊण=नमस्कार करके, **प्रणत**=नमित, **सुरगण**=देवो के समूह की, **चूडामणि**=शिरोमणि की, **किरण रंजिअं**=किरणो से शोभित, **चलण जुअलं**=चरणद्वय, **महाभय**=महाभयो को, **पणासणं**=नाश करने वाले, **मुणिणो**=मुनि का, **संथवं वुच्छं**=संस्तवन करूँगा।

भावार्थ

जिनके चरण युगल नमे हुए देवगणो के मस्तक मणियो की किरणो से शोभायमान है और जो महाभयो को नष्ट करने वाले है उन महामुनि तीर्थेश प्रभु पार्श्वनाथ को नमस्कार करके उनकी मै स्तुति करूँगा।

सडिय कर चरण नह मुह निव्वुड-नासा विवन्न लावन्ना
कुट्ठ महारोगानल फुलिंग निद्दड्ढ सव्वंगा ॥2 ॥
ते तुह चलणाराहणा सलिलंजलि-सेय वुड्ढि उच्छाहा
वणदव दड्ढा गिरि, पायवव्व पत्ता पुणो लच्छिं ॥3 ॥

अन्वयार्थ

सडिय=सडे हुए, **कर चरण नह मुह**=हाथ, पॉव, नख, मुख, **निव्वुड-नासा**=बैठी हुई है नाक, **विवन्न-लावन्ना**=नष्ट सौन्दर्य, **कुट्ठ**=कुष्ठ, **महारोगानल**=महारोग रूपी अग्नि, **फुलिंग**=कणो से, **निद्दड्ढ**=जला हुआ, **सव्वंगा**=सर्वांग प्रत्यंग।

ते=वे, **तुह**=आपके, **चलणाराहणा**=चरणो की आराधना से, **सलिलंजलि-सेय**=जलांजलि के सीचन से, **वुड्ढि-उच्छाहा**=वृद्धिगत उत्साह, **वणदव-दड्ढा**=दावानल से जले, **गिरि**=पर्वत, **पायवव्व**=पादप की तरह, **पुणो लच्छिं**=पुन कांति को, **पत्ता**=प्राप्त करते है।

भावार्थ

जिनके हाथ, पॉव, नख और मुख सडे हुए ह वठा हुई नासिका के कारण जिनका सौन्दर्य नष्ट हो गया है तथा जिनके शरीर के सब अग प्रत्यग कुष्ठ महारोग के ज्वालाओ से जल रहे है वे आपके चरणो की सद्सेवा, सुश्रुषा और

जलाजलि के अभिसिचन से पुन· दावानल से जले पर्वतीय वृक्ष बरसात होने से हरे-भरे होकर शोभा पाते है वैसे निरामय हो जाने से उत्साह एव उमग लिए नवजीवन पाएँ शोभित होते है।

दुव्वाय-खुभिय जलनिहि, उब्भड-कल्लोल-भीसणारावे।
संभंत भय विसंठुल-निज्जामय मुक्क-वावारे ॥4 ॥
अविदलिय-जाणवत्ता, खणेण पावंति इच्छियं कूलं।
पासजिण चलण जुयलं, निच्चं चिअ जे नमंति नरा ॥5 ॥

अन्वयार्थ

दुव्वाय=भयकर तूफान, **खुभिय**=क्षुब्ध, **जलनिहि**=सागर, **उब्भड- कल्लोल**= प्रचण्ड तरगो से, **भीसणारावे**=भीषण आवाज होने पर, **संभंत**=सभ्रान्त, **भय-विसंठुल**=भयाकुल, **निज्जामय**=पोत नियता, **मुक्क-वावारे**=व्यापार छोड दिया है।

अविदलिय=भटका हुआ, यथास्थित, **जाणवत्ता**=यान, पात्र, **खणेण**=क्षण भर मे, **इच्छिय कूलं**=इच्छित किनारे को, **पावंति**=पाते है, **पासजिण चलण जुअलं**=पार्श्व जिन के चरण युगल को, **निच्चं चिअ**=नित्य ही, **जे नमंति**=जो नमस्कार करते है, **नरा**=मनुष्य।

भावार्थ

जिस समय प्रबल तूफान के कारण सागर क्षुब्ध हो उठता है, जल की प्रचण्ड तरगो से भीषण आवाज होने से दिग्विमूढ भयाकुल बना हुआ कर्णधार भी अपना काम छोड देता है, उस स्थिति मे भी भगवान पार्श्वनाथ के चरणो मे नित्य नमन करने वाले मनुष्य शीघ्र ही सुरक्षित किनारे को प्राप्त करते है।

खर पवणद्धुय वणदव, जालावलि मिलिय सयल दुमगहणे।
डज्झन्त-मुग्धमय बहु, भीसणरव भीसणंमि वणे ॥6 ॥
जग गरुणो कम जुयलं, निव्वाविय सयल तिहुअणाभोअं।
जे संमरंति मणुआ, न कुणइ जलणो भयं तेसिं ॥7 ॥

अन्वयार्थ

खर पवणुद्धुय=तेज पवन से उद्यत, **वणदव**=दवाग्नि, **जालावलि**=ज्वाला समूह, **मिलिय सयल**=मिले हुए सम्पूर्ण, **दुम गहणे**=वृक्षो के समूह तक पहुँच जाता है, **डज्झन्त मुग्ध**=जलते हुए भोले भाले, **मय वहु**=मृगो को अत्यधिक, **भीसणारव**=क्रन्दन भरी चीत्कार, **भीसणंमि वणे**=भयकर वन मे।

जग गुरुणो=जगत गुरु के, **कम जुअलं**=चरण युगल को, **निव्वाविय**=स्थिर होकर के, **तिहुअणाभोअं सयल**=सम्पूर्ण तीन लोक के द्रष्टा को, **जो समरंति**=जो स्मरण करते हैं, **मणुआ**=मनुष्य, **तेसिं**=उनको, **जलणो भयं**=अग्नि का भय, **न कुणइ**=भयभीत नही करता।

भावार्थ

जव दावाग्नि भडक उठती है और प्रचण्ड हवा के कारण फैलती हुई सघन वृक्षो के निविड तक पहॅुच जाती है, उस समय भद्रिक हिरणी आदि पशु-पक्षियो के करुण क्रन्दन से सारा जगल भयावह हो उठता है वह भयानक दावानल न उन मनुष्यो को भयभीत कर सकता है, न उन्हे क्षति पहॅुचा सकता है जो सर्वलोक के दृष्टा जगद्गुरु त्रिलोकीनाथ श्री पार्श्व प्रभु के चरण युगलो मे स्थिर होकर उन्हे स्मरण करता है।

विलसंत भोग भीषण, फुरिआरुण नयण तरल जीहालं।
उग्ग भुयंगं नव जलय सच्छहं भीसणायारं ॥8 ॥
मन्नंति कीड सरिसं, दूर परिच्छूढ विसम विसवेगा।
तुह नामक्खर फुड सिद्ध मंत गुरुआ नरा लोए॥9 ॥

अन्वयार्थ

विलसंत=चमकते हुए, **भोग भीषण**=भयकर फण धर, **फुरिआरुण नयण**=विस्फारित लाल नेत्र, **तरल जीहालं**=लपलपाती जिह्वा को, **उग्ग भुयंगं**=उग्र भुजगं को, **नव जलय**=काले कजराले मेघ के समान, **भीषणायारं**=विकराल आकार।

कीड सरिसं=कीडे के समान, **मन्नंति**=मानते है, **विसग विसवेगा**=असमान विपधर, **दूर परिच्छूढ**=दूर फेक देते है, **तुह नामक्खर**=तुम्हारा नामक्षर, **फुडसिद्ध**=स्फुट सिद्ध है, **मंत गुरुआ**=मन्त्रोच्चारण करने वाला, **नरा लोए**=मनुष्य लोक मे।

भावार्थ

हे भगवन्! आपके नामाक्षर रूपी मंत्र का अविराम उच्चारण करने वाला मनुष्य इस संसार मे चमकीले शरीर, अत्यधिक लाल नेत्र, लपलपाती जीभ, घने काले, विकराल आकार वाले भयकर विपधर को क्षुद्र कीट सम मानकर दूर फेक देते है।

अडवीसु भिल्ल तक्कर, पुलिद सद्दूल सद्द भीमासु
भय विहुर वुन्न कायर, उल्लूरिय पहिय सत्थासु ॥10 ॥
अविलुत्त विहव सारा, तुह नाह पणाम मत्त वावारा।
ववगय विग्धा सिग्धं, पत्ता हिय इच्छियं ठाणं ॥11 ॥

अन्वयार्थ

अडवीसु=अटवी मे, भिल्ल तक्कर-पुलिंद-सद्दूल=भील, तस्कर, सिह, वाघ के, सद्द भीमासु=भयावह शब्दो मे, भय विहूर=भय से विह्वल, वुन्न-त्रस्त कायर=डरपोक, उल्लूरिअ=विनाशित, पहिय सत्थासु=पथिको का समूह।

अविलुत=छिपा हुआ, विहव सारा=ऐश्वर्य, तुह-नाह=हे नाथ! तुम्हारे, पणाम-मत्त-वावारा=नमन मे मत्तवाला, ववगय=नष्ट हो गये है, विग्धा=विघ्न, सिग्धं=शीघ्र, हिय इच्छियं ठाण=मनोनुकूल स्थान को, पत्ता=पाते है।

भावार्थ

जो वन भील, तस्कर, सिह और बाघ के शवदो से भयावह उठता है, जहाँ मुसाफिर सार्थवाह घबराएँ, परेशान, कायर, साहस-शक्तिहीन बना लूट लिए जाते है। ऐसे भयानक भयावह जगल से जो आपको नमस्कार करने मे सलग्न बना रहता है। वे निर्विघ्नतापूर्वक अपने जान माल का रक्षण करते हुए सुरक्षित स्थान को प्राप्त कर लेते है।

पज्जलियानल नयणं, दूर वियारिय मुंह महाकायं।
नह कुलिस घाय विअलिय गइंद कुंभत्थला भोअं ॥12 ॥
पणय ससंभम-पत्थिव, नह मणि माणिक्क पडिअ पडिमस्स।
तुह वयण पहरण धरा, सीहं कुद्ध पि ण गिणंति ॥13 ॥

अन्वयार्थ

पज्जलियानल-नयणं=प्रज्वलित है अग्नि के समान ऑखे, दूर वियारिय मुँह=दूर से ही विस्फारि है मुँह, महाकायं=विशालकाय, नह=नाखूनो से, कुलिस=वज्र, धाय=प्रहार से, विगलिय गइन्द=चीर डाला है गजेन्द्र के, कुम्भत्थलाभोअं=कुम्भ स्थल के प्रदेश को।

पणय=नमे हुए, ससभम=आदर सहित, पत्थिव=नरेन्द्र, नह=नभ से, पडिअ=गिरे गए, मणि माणिक्क=मणि माणिक्य के, पडिमस्स=समान, तुह वयण=तुम्हारे वचन रूपी, पहरण धरा=अस्त्र को धारण करने वाले, कुद्धं पि सीहं=क्रोधित सिह को भी, ण गिणंति= नही गिनते है।

भावार्थ

जिसकी ऑखे रक्ताभ है, जिसने दूर से ही मुॅह फाड रखा है, जो नाखून रूप वज्र के प्रहार से महाकाय गजेन्द्र के कुम्भस्थल को चीरने वाले कोपायमान सिह को आपके श्री चरणो मे समादरपूर्वक झुके और मणि माणिक के समान आपके जीवनाकाश से बरसते हुए वचनो के अस्त्र को धारण करने वाला नरेन्द्र कुछ नही गिनता है।

> ससि धवल दंतमुसलं, दीह करुल्लाल वुड्ढि उच्छाहं।
> महुपिंग नयण जुयलं, ससलिल नव जलहराराव ॥14 ॥
> भीमं महा गइंदं, अच्चासन्नंपि ते न वि गणंति।
> जे तुम्ह चलण जुयलं, मुणिवइ! तुंगं समल्लीणा ॥15 ॥

अन्वयार्थ

ससिधवल=चन्द्र समान श्वेत, **दंतमुसलं**=मुसल जैसे दात, **दीह करुल्लाल**=लम्बी सूंड सचालन से, **वुड्ढि उच्छाह**=उत्साह वृद्धिगत है, **महुपिंग**=मधु के समान पीले, **णयण जुयलं**=नयन युगल, **ससलिल**=सजल, **नवजलह**=नूतन मेघ गर्जना सी, **आरावं**=आवाज को।

भीमं=भीषण, **महागइंदे**=महत् गजेन्द्र को, **अच्चासन्नंपि**=अत्यन्त निकट आने पर भी, **न विगिणंति**=कुछ भी नही गिनते है, **जे तुम्ह**=जो तुम्हारे, **चलण जुअलं**=चरण युगल मे, **मुणिवइ**=मुनीश्वर, **तुंगं**=उन्नत, **समल्लीणा**=अच्छी तरह से लीन।

भावार्थ

हे मुनीश्वर! पार्श्वनाथ जो आपके उन्नत पाद पद्मो मे सम्यक्तया लीन है। वे चन्द्र जैसे श्वेत मुसलवत् दांत वाले हैं, जिसकी लम्बू सूंड सचालन से उत्साह सर्वधित है, मधु की तरह जिसकी ऑखे पीली है, जल सहित नूतन मेघ की तरह जिसकी गडगडाहट है ऐसे भयोत्पादक विशालकाय गजेन्द्र के सन्निकट आने पर भी उसे कुछ नही समझते है।

> समरम्मि तिक्ख खग्गाभिघाय पव्विद्ध उद्धुय कवंधे
> कुंतविणि भिन्न-करि-कलह, मुक्क सिक्कार पउरम्मि ॥16 ॥
> निज्जिय-दप्पुद्धुर-रिउ, नरिंद निवहा भडा जसं धवलं।
> पावंति पाव पसमिण! पासजिण! तुह-प्प भावेण ॥17 ॥

अन्वयार्थ

समरम्मि=युद्ध मे, **तिक्ख-खग्गा**=तीक्ष्ण खड्ग के, **अभिघाय**=अभिघात से, **पव्विद्ध उद्धुय कबंधे**=विध्वस्त होकर उड गया शिर, **कंतविणि भिन्न**=भालो से विदीर्ण, **करि कलहं**=युवा हाथियो की, **मुक्क सिक्कार**=कठिन चिघाड, **पउरम्मि**=प्रचुर होने पर।

निज्जिय=जिसने जीत लिया, **दप्पुद्धर**=प्रचण्ड गर्वीले, **रिउ**=शत्रु, **नरिंद निवहा**=नरेन्द्र के समान, **भडा**=शूरवीर, **जस धवलं**=निष्कलक यश को, **पावंति**=पा लेते है, **पाव पसमिण**=पाप कर्मो को शात करने वाले, **पास जिण**=पार्श्व जिनवर, **तुहप्पभावेण**=तुम्हारे प्रभाव से।

भावार्थ

जहॉ तीक्ष्ण तलवारो के वार-प्रहार से शिर से अलग होकर धड नाचने लगते है, भालो से विदीर्ण हाथियो की प्रचुर चिघाडो से व्याप्त खूखार युद्ध मे भी शूरवीर सुभट अभिमान से उन्मत्त गर्वीले शत्रुओ को परास्त करके हे पापनाशक! पार्श्व जिनेश आपके प्रभाव से नरेन्द्र के समान यश. कीर्ति को प्राप्त करते है।

रोग जल जलण विसहर चोरारि मइंद गय रण भयाइ।
पास जिण नाम संकित्तणेण, पसमन्ति सव्वाइं ॥18॥
एवं महा-भयहरं पास जिणंदस्स संथवमुआरं।
भविय-जणाणंद-यरं कल्लाण परंपर निहाणं ॥19॥

अन्वयार्थ

रोग-जल-जलण=रोग, जल, अग्नि, **विसहर**=सर्प, **चोरारि मइद गय रण भयाइ**=चोर, शत्रु, सिह, हस्ति और युद्ध का भय, **पासजिण**=पार्श्व जिनद के, **नाम संकितणेण**=नाम सकीर्तन से, **सव्वाइं पसमंति**=सारे प्रशमित हो जाते हैं।

एवं महाभयं हरं=इस प्रकार महाभय को हरने वाले, **पास जिणंदस्स**=पार्श्व जिनेन्द्र का, **संथवमुआरं**=सस्तवन प्रभावक, **भवियजणा**=भव्य जनो के लिए, **आणदयरं**=आनन्द कर है, **कल्लाण परंपर निहाणं**=कल्याण कर परम्परा का अक्षय कोष है।

भावार्थ

भगवान पार्श्वनाथ के नाम सकीर्तन, गुणनुकीर्तन से व्याधि, जल, अग्नि विषधर, चोर, शत्रु, सिह, हस्ति और युद्ध आदि से सब भय नष्ट हो जाते है। इस प्रकार

भगवान पार्श्वनाथ का स्तोत्र महाभयो का विनाशक, भक्ति प्रधान भव्य जनो के लिए आनन्द करने वाला तथा कल्याणकारी परम्परा के निर्वाह का अक्षय कोष है।

रायभय जक्ख रक्खस, कुसुमिण दुस्सउण रिक्ख पीडासु
सझासु दोसु पंथे, उवसग्गे तह य रयणीसु ॥20 ॥
जो पढइ जो अ निसुणइ, ताणं कइणो य माणतुंगस्स।
पासो पावं पसमेउ, सयल, भुवण-च्चिअ-च्चलणो ॥21 ॥

अन्वयार्थ

राजभय जक्ख रक्खस=राजभय, यक्ष, राक्षस, **कुसुमिण दुस्सउण रिक्ख पीडासु**=दुःस्वप्न, अपशुकन, ग्रह पीडाओ मे, **संझासु दोसु**=दोनो संध्या मे, **पंथे**=मार्ग मे, **उवसग्गे**=उपसर्ग मे, **तह य**=तथा और, **रयणीसु**=रात्रि मे।

जो पढ़इ=जो पढता है, **जो अ निसुणइ**=और जो सुनता है, **ताणं**=उनके, **कइणो य माणतुंगस्स**=और कवि मानतुंग के, **पासो**=हे पार्श्व प्रभु, **पावं पसमेउ**=पाप को प्रशमित करे, **सयल भुवण**=सम्पूर्ण जगत के, **च्चिअ**=निश्चय, **चलणो**=चरण।

भावार्थ

नरेन्द्र, यक्ष, राक्षस, बुरे स्वप्न, अपशुकन, ग्रह-नक्षत्रो की पीडाओ के समय, दोनो संध्या काल, मार्ग चलते, उपसर्ग आने पर और रात्रि के समय मे जो मनुष्य इस स्तोत्र को पढता है और जो सुनता है। उनके तथा स्तोत्रकर्ता कवि मान्तुग के पाप कर्मो/पाप वासना के कुत्सित संस्कारो को वे भगवान श्री पार्श्वनाथ प्रशान्त करे। जिनके चरण सम्पूर्ण जगत वंदित पूजित है।

उवसग्गं ते कमठा-सुरम्मि झाणाओ जो ण संचलिओ।
सुर नर किन्नर जुवईहिं संथुओ जयउ पासजिणो ॥22 ॥

अन्वयार्थ

उवसग्गंते=उपसर्ग देने पर, **कमठासुरम्मि**=कमठ नामक असुर, **झाणाओ**=ध्यान से, **जो न संचलिओ**=जो चलायमान नही हुए, **सुर नर किन्नर जुवईहिं**=सुर, नर, किन्नर युवतियो मे, **संथुओं**=संस्तुतित है, **जयउ पास जिणो**=पार्श्व जिनेश्वर जयवन्त हो।

भावार्थ

कमठ नामक दैत्य के उपसर्ग देने पर भी ध्यान से चलायमान नही हुए, देव, मनुष्य और किन्नर युवतियो द्वारा जिनकी स्तुति की गई है, वे पार्श्व जिनेन्द्र जयवन्त हो।

एयस्स मज्झयारे, अट्ठारस्स अक्खरेहि जो मंतो।
जो जाणइ सो झायइ, परम पयत्थं फुडं पासं ॥23 ॥

अन्वयार्थ

एयस्स मज्झयारे=इसके मध्य मे, **अट्ठारस्स अक्खरेहि**=अट्ठारह अक्षरो का, **जो मंतो**=जो मत्र है, **जो जाणइ सो झायइ**=जो जानता है सो ध्याता है, **परम पयत्थं**=परम पद को, **फुडं पास**=स्फुट पार्श्वनाथ को।

भावार्थ

इस स्तोत्र के मध्य मे "नमिउण पास विसहर वसह जिण फुलिंग" आए हुए इन अट्ठारह अक्षरो का जो (चिन्तामणि नामक जो गुप्त) मत्र है उसे गुरुगम से विधि सहित जो जानता है वह परम पद को प्राप्त हुए पार्श्व प्रभु को भव्य रूप से ध्याता है।

पासह समरणं जो कुणइ, संतुट्ठ हियएण।
अट्ठुत्तर-सय-वाहिभयं, नासेइ तस्स दूरेण ॥24 ॥

अन्वयार्थ

पासह समरणं=पार्श्वनाथ प्रभु का स्मरण, **जो कुणइ सतुट्ठ हियएण**=जो करता है, सतुष्ट हृदय से, **अट्ठुत्तर सय**=एक सौ आठ, **वाहि भयं**=व्याधिओ के भय को, **नासेइ तस्सदूरेण**=नष्ट करता है, उसके दूर से।

भावार्थ

जो मनुष्य सतुष्ट हृदय से पार्श्वनाथ प्रभु का स्मरण करता है उसके एक सौ आठ व्याधियाँ एव भय दूर से ही नष्ट हो जाते है।

□

परमेष्ठि महिमाष्टक

य सर्व दुख दलने किल कल्पवृक्ष.
चिन्तामणि: शुभ मनोरथ पूरणे स: ।
कन्दर्प दर्प दहनैक विधौ दवाग्नि:
लोक त्रये विजयते परमेष्ठि मंत्र. ।।1 ।।

अन्वयार्थ

सर्व दु:ख दलने=समस्त दुखो को नष्ट करने मे, य. किल कल्प वृक्ष.=जो सचमुच कल्प वृक्ष है, स: शुभ मनोरथ पूरणे=शुभ कामनाओ को पूर्ण करने मे वह, चिन्तामणि:=चिन्तामणि है, कन्दर्प दर्प दहने=काम रूपी दर्प को जलाने मे, एक विधौ दवाग्नि:=एक प्रकार का दावानल है, लोकत्रये विजयते=त्रिभुवन विजयी, परमेष्ठि मंत्र:=परमेष्ठि महामत्र नमस्कार है ।

भावार्थ

समग्र दुखो को नष्ट करने मे जो सचमुच कल्पवृक्ष है, शुभ चिन्तित संकल्पो का पूर्ण करने मे वह चिन्तामणी है, काम रूपी दर्प को जलाने मे एक प्रकार का दावानल है, वह परमेष्ठि महामत्र नवकार त्रिजगत मे विजय पाता है ।

सर्वागम श्रुत समुद्र सुधेन्दु सारा
चारित्र चन्दन वनं सदनं सुखानाम् ।
कल्याण कुन्दन खनिर् दमनं दराणां
लोक त्रये विजयते परमेष्ठि मंत्र. ।।2 ।।

अन्वयार्थ

सर्वागम श्रुत समुद्र=सम्पूर्ण आगमो का श्रुत रूपी समुद्र, सुधेन्दु सारा.=चन्द्रकला सदृश सार भूत, चारित्र चन्दन वनं=चारित्र रूपी चन्दन वन, सुखानां सदन=सुखो का भवन हैं, कल्याण कुन्दन खनि =आत्मोद्धार के स्वर्ण खदान के, दराणां दमनं=छिद्रो को रोकने वाला, परमेष्ठि मंत्र लोकत्रये विजयते=परमेष्ठि महामंत्र त्रिलोक मे विजित हैं ।

भावार्थ

समस्त आगमो के श्रुत ज्ञान का है सागर, चन्द्रकला सम सार भूत है, चारित्र रूप चन्दन वन है, सुखो का भव्य भवन है, आत्म रूप विशुद्ध स्वर्णखान के छल-छिद्रो को रोकने वाला परमेष्ठि महामत्र त्रिजगत विजयशील है।

संसार सागर निमज्जद-पूर्व नौका
सिद्धौषधिर विविध रोग विनाशनैय.।
नि.शेष लब्धि बल बोध तरोश्च बीजं
लोकत्रये विजयते परमेष्ठि मंत्र. ॥3 ॥

अन्वयार्थ

संसार सागर निमज्जत=ससार सागर मे डूबने वालो के लिए, **अपूर्व नौका**=अद्भुत नैय्या-बेडा, **विविध रोग विनाशने**=नाना प्रकार के रोगो को नष्ट करने मे, य. **सिद्धौषधि**=जो अकसीर दवा है, **नि शेष लब्धि बल**=सम्पूर्ण शक्तियो का बल, **बोध तरु· च बीजं**=ज्ञान रूपी वृक्ष का बीज है वह, **लोकत्रये विजयते**=त्रिभुवन मे जय प्राप्त, **परमेष्ठि मंत्र.**=परमेष्ठि मत्र है।

भावार्थ

जो ससार सागर मे डूबते हुओ के लिए अनोखी नौका है, अनेक प्रकार के रोगो को नष्ट करने मे राम बाण औषध है, जो सम्पूर्ण शक्तियो का बल और ज्ञान वृक्ष का बीज है, वह त्रिभुवन मे विजय प्राप्त परमेष्ठि महामत्र है।

सूर्य. सहस्र किरणैर् हरति तमांसि
सिंहो यथा गज गणाश्च नखैर् निहन्ति।
संसार वर्ति दुरितानि तथैष मन्त्र.
लोक त्रये विजयते परमेष्ठि. मन्त्र ॥4 ॥

अन्वयार्थ

यथा=जिस प्रकार, **सूर्य सहस्र किरणै**=सूर्य हजार किरणो से, **तमांसि हरति**=अधकार को हरता है, **सिंहो**=सिह, **गज गणांश्च नखै निहन्ति**=हस्ति समूह को नखो से मारता है, **तथा एष मन्त्र.**=उसी प्रकार यह मत्र, **संसार वर्ति**=ससार मे होने वाले, **दुरितानि**=पाप कर्मो को नष्ट करने वाला, त्रिभुवन विजयी परमेष्ठि महामंत्र है।

भावार्थ

जिस प्रकार सूर्य अपनी सहस्त्र किरणो के द्वारा अधकार समूह को हरता है, सिंह करि समूह को नखो से चीर डालता है उसी प्रकार यह परमेष्ठि महामंत्र नवकार ससार मे होने वाले पापकर्मो के समूह को नष्ट करने वाला है, यह तीन लोक मे अजेय-अपराभूत परमेष्ठि महामंत्र है।

पद्माकरे रुचिर रश्मिरि वौषधीशः
शीघ्रं प्रबोधयति निद्रित कैरवाणि।
अन्तः सुषुप्त गुण पदम दलानि चैवं
लोक त्रये विजयते परमेष्ठि मंत्र. ॥5॥

अन्वयार्थ

पदमाकरे=तलाब के भीतर, **रुचि**·=सुन्दर, **रश्मि इव औषधीश.**=औषधियो का स्वामी मानो प्रकाश किरणो से, **निद्रित**=सोए हुए, **कैरवाणि**=श्वेत कमलो को, **शीघ्रं प्रबोधयति**=शीघ्र जगा देता है, **एवं च**=और इसी प्रकार, **अन्त सुषुप्त**=अन्त.करण मे सोए हुए, **गुण पदम दलानि**=गुण रूपी कमल दल को विकसित करने वाला, **परमेष्ठिः मन्त्रः**=परमेष्ठि महामत्र, **लोकत्रये विजयते**=तीन जगत मे विजय पाता है।

भावार्थ

सरोवर मे औषधियो का स्वामी स्वेच्छानुसार मानो अपनी किरणो से सोए हुए श्वेत कमलो को शीघ्र जगा देता है अर्थात् विकसित कर देता है, इसी प्रकार अन्त.करण मे सोए हुए आत्मा के दिव्य गुण कमल दलो को विकसित करने वाला परमेष्ठि महामंत्र अखिल जगत मे विजय पाता है।

भू मण्डलेषु शुभ वस्तु न विद्यते तद
ध्यानेन यस्य ननु यन् न हि साधनीयम्।
दुख न तद भवति यस्य विनाशनं नो
लोकत्रये विजयते परमेष्ठि मंत्र. ॥6॥

अन्वयार्थ

भू मण्डलेषु=पृथ्वी तल पर, **तद शुभ वस्तु**=वह शुभ वस्तु, **न विद्यते**=नही हैं, **यन्**=जो, **यस्य ध्यानेन**=परमेष्ठि महामंत्र के ध्यान से, **ननु**=निश्चय, **साधनीय न हि**=साधी नही जा सके, **नो**=हमारे को, **यस्य विनाशन**=जिसके नष्ट होने

पर, तद्=वह, न दुखं भवति=दुख नही होता है, **परमेष्ठि मंत्र** =परमेष्ठि महामत्र, **लोकत्रये विजयते**=तीन लोक मे विजय पाता है ।

भावार्थ

चौदह राजू प्रमाण अधो मध्य, उर्ध्व लोक मे ऐसी कोई शुभ वस्तु नही है जिसे परमेष्ठि महामत्र के ध्यान मे नही पाया जा सके अर्थात् सब कुछ पाया जा सकता है। जब अतुलनीय असीम शक्तिधारक परमेष्ठि महामत्र पास मे है, उसे उन वस्तुओ के नष्ट होने से वह दुख नही होता क्योकि त्रिलोक विजय प्रदाता परमेष्ठि महामत्र है ।

श्री पाल देव धरणेन्द्र सुदर्शनाद्या.
पल्ली पतिश्च शिव कम्बल शम्बलाद्या ।
ध्यात्वा हि यं पदमगु: परमं पवित्रं
लोकत्रये विजयते परमेष्ठि मंत्र ॥7 ॥

अन्वयार्थ

श्री पाल=श्री पाल नरेश्वर, **देव धरणेन्द्र**=नाग कुमार जाति का धरणेन्द्र देव, **सुदर्शन**=सेठ सुदर्शन आद्या इत्यादि, **पल्ली पति** =डाकुओ का स्वामी, **च शिव**=और शिव, **कंबल शम्बलाद्या** =कम्वल शम्वल आदि, **परमं पवित्रं पदमगु** =परम पवित्र पदो को, **यं ध्यात्वा हि**=ध्यान करके ही जो तिर गए वह, **लोकत्रये विजयते परमेष्ठि मंत्र** =परमेष्ठि महामत्र तीन लोक मे अपराजेय है ।

भावार्थ

श्री पाल नरेश्वर, धरणेन्द्र देव, सुदर्शन सेठ, डाकुओ का सरदार, शिव, कम्वल-शम्वल आदि परम पवित्र परमेष्ठि पदो को ध्याकर के तिर गए वह महामत्र परमेष्ठि तीन लोक मे विजय पाता है, सर्वत्र सर्वकालिक दशा मे अपराजेय है ।

भक्त्या दधाति हृदि यो ननु मन्त्र राजं
दिव्यॉ गति व्रजति नूतन मुक्ति मोदं ।
चूर्णी करोति भव संचित कर्म शैलं
लोकत्रये विजयते परमेष्ठि मंत्र ॥8 ॥

अन्वयार्थ

मन्त्रराज=मंत्राधिराज नमस्कार महामत्र को, हृदि भक्त्या=हृदय मे भक्ति भाव से यो दधाति=जो धारण करता है वह, ननु दिव्यां गतिं=निश्चय ही दिव्य गति

को, **व्रजति**=प्राप्त होता है, **भव संचित कर्म शैलं**=जन्म दायक उपार्जित कर्म रूपी पर्वत को, **चूर्णी करोति**=चूर्ण करता है, **नूतन**=नवीन, **मुक्ति मोद्**=मुक्ति के आनन्द को प्राप्त होता है वह, **परमेष्ठि मंत्र**=परमेष्ठि महामत्र, **लोकत्रये विजयते**=तीन लोक मे विजय पाता है।

भावार्थ

अपराजेय शक्ति धारक मत्राधिराज महामत्र नवकार को हृदय मे भक्ति भाव से जो धारण करता है वह अवश्यमेव दिव्य गति को पाता है, जन्म-मरण के हेतु कर्म पर्वत को नष्ट कर हे 'नवीन चन्द्र' मुनि वह मुक्ति के आनन्द को प्राप्त होता है। वह परमेष्ठि महामंत्र तीन लोक मे विजयशील है।

□

भक्तामर स्तोत्र

भक्तामर प्रणत मौलि मणि प्रभाणा-
मुद्द्योतकं दलित पाप तमो वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिन पाद युगं युगादा
वालम्बनं भव जले पततां जनानाम्॥1॥

अन्वयार्थ

भक्त=भक्तिमान्, अमर प्रणत=देवो के झुके हुए, मौलि-मणि प्रभाणां=मुकुट की मणि प्रभा को, उदद्योतकं=प्रकाशित करने वाले, पाप तमो वितानं=पाप प्रसरित, अज्ञ=अधकार को, दलित=नष्ट करने वाले, भवजले=ससार सागर मे, पततां जनानां=गिरते हुए मनुष्यो को, युगादौ=युग के प्रारम्भ मे, आलम्बनं=सहारा देने वाले, जिन पाद युगं=श्री ऋषभ जिन के चरण युगल को, सम्यक् प्रणम्य=अच्छी तरह प्रणाम करके।

य· संस्तुत सकल वाङ्मय तत्त्व बोधा
दुद्भूत बुद्धि-पटुभि. सुरलोक नाथै।
स्तोत्रैर् जगत् त्रितय चित्त हरै रुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥2॥

अन्वयार्थ

य.=जो, सकल वाङ्मय=सम्पूर्ण द्वादशाग के, तत्त्व बोधात्=तत्त्व ज्ञान से, उद्भूत बुद्धि पटुभि.=उत्पन्न बुद्धि की कुशलता से, सुरलोक नाथै.=दवलोक के स्वामी इन्द्रो ने, जगत् त्रितय=तीन जगत के, चित्त हरैः=चित्त को हरने वाले, उदारै. स्तोत्रै.=महान स्तोत्र द्वारा, संस्तुत=सम्यकतया स्तवन किये गए, तं प्रथमं=उन प्रथम, जिनेन्द्रं=जिनेश्वर देव का, किल अहं अपि=निश्चय से मै मान्तुग भी, स्तोष्ये=स्तवन करूँगा।

भावार्थ

भक्तिमान् देवताओ के नमस्कार करते समय उनके मुकुटो मे लगी मणियो की प्रभा को और अधिक तेजस्वी करने वाले, जीवन जीने की यथार्थ कला और कर्तव्य वोध देकर पाप प्रसारित अज्ञान अधकार को दूर करने वाले संसार सागर मे डूबने वाले मनुष्यो को युगारम्भ मे सहारा देने वाले, जिनेश्वर प्रभु के दोनो चरणो मे नमस्कार करके, जिनकी स्तुति द्वादशाग वाणी के तत्त्व ज्ञान से

उत्पन्न अतीव निपुण बुद्धि बने हुए इन्द्रो ने त्रिभुवन के चित्त को हरने वाले गहन व विशाल स्तोत्रो की रचना की। आश्चर्य है कि मै भी उन प्रथम तीर्थाधिपति जिनेश्वर देव श्री ऋषभदेव की स्तुति करूँगा।

बुद्धया विनापि विबुधार्चित पाद पीठ!
स्तोतुं समुद्यत मतिर् विगत-त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल संस्थित-मिंदु बिम्ब
मन्यः कः इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्॥3॥

अन्वयार्थ

विबुध अर्चित पाद पीठ=देवो से पूजित है जिनके चरण रखने की चौकी, **बुद्धया विना अपि**=बुद्धि से रहित होने पर भी, **अहं स्तोतुं**=मै स्तुति के लिए, **विगत त्रप.**=लज्जा रहित, **समुद्यत मति.**=तत्पर मति बना हूँ, **बालं विहाय**=बालक को छोडकर, **अन्य. क· जन.**=दूसरा कौन मनुष्य, **जल संस्थितं इन्दु बिम्बं**=जल मे स्थित चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को, **सहसा ग्रहीतुं**=एकदम पकडने के लिए, **इच्छति**=इच्छा करता है।

भावार्थ

हे जगज्जीवन हृदयेश्वर! आपका चरणासन विशिष्ट जनो से पूजित है और मै बुद्धिविहीन हूँ तथापि निर्लज्ज होकर आपकी स्तुति करने के लिए तत्पर बना हूँ। यह मेरी निरी बाल चेष्टापूर्ण उपक्रम है, क्योकि जल मे प्रतिबिम्बित चन्द्रमा को नासमझ निर्दोष वृति वाले बालक के सिवाय पकडने का साहस और कौन कर सकता है? कोई नही।

वक्तुं गुणान् गुण समुद्र! शशांक कान्तान्
कस्ते क्षम. सुर-गुरु प्रतिमोऽपि बुद्धया।
कल्पान्त काल पवनोद्धत नक्र चक्रं
को वा तरीतु-मल-मम्बु निधिं भुजाभ्याम्॥4॥

अन्वयार्थ

गुण-समुद्र=हे गुण सागर!, **बुद्धया**=बुद्धि से, **सुर गुरु प्रतिम अपि**=बृहस्पति के समान भी, **क**=कौन, **ते शशांक कान्तान्**=तुम्हारे चन्द्र सम उज्ज्वल, **गुणान्**=गुणो को, **वक्तुं क्षम**=कहने के लिए समर्थ है, **कल्पान्त काल**=प्रलय काल की, **पवन उद्धत**=वायु से उछल रहे, **नक्र-चक्रं**=विक्षुब्ध मगरमच्छो से युक्त, **अम्बुनिधिं**=समुद्र को, **भुजाभ्यां तरीतुं**=भुजाओ के द्वारा तैरने के लिए, वा अलम्=कौन पुरुष समर्थ है।

भावार्थ

हे अन्तर्यामी प्रभो। प्रलय काल की प्रचण्ड वायु से उछल रहे विक्षुब्ध मगरमच्छो वाले भीषण महासागर को दोनो भुजाओ से पार करने मे कौन समर्थ हो सकता है? कोई नही। इसी प्रकार हे गुण सागर! बौद्धिक विकास मे चाहे कोई बृहस्पति के समान हो फिर भी वह आपके उज्ज्वल गुणो को कहने मे समर्थ नही हो सकता।

सोऽहं तथापि तव भक्ति वशान् मुनीश!
कर्तु स्तवं विगत शक्ति-रपि प्रवृत।
प्रीत्याऽऽम वीर्य-मविचार्य मृगो मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निज शिशोः परिपालनार्थम्॥5॥

अन्वयार्थ

मुनीश=हे मुनियो के स्वामी, **विगत शक्तिः अपि**=शक्ति रहित होने पर भी, **अहं तव भक्ति वशात्**=मै आपकी भक्ति के अधीनता से, **स. स्तवं**=उस स्तुति को, **कर्तु तथापि**=करने के लिए फिर भी, **प्रवृत.**=प्रवृत हुआ हूॅ, **मृग प्रीत्या**=हिरण प्रेमवश, **आत्मवीर्य**=अपनी शक्ति का, **अविचार्य**=विचार किए बिना, **निजशिशो परिपालनार्थ**=अपने बच्चे की रक्षा के लिए, **किं मृगेन्द्रं**=क्या सिंह के सम्मुख, **न अभ्येति**=नही अड जाता है।

भावार्थ

हे मुनी नाथ। जैसे हरिण मे शक्ति न होने पर भी अपने बच्चे को सिंह के पजे मे फसा देखकर प्रीतिवश उसे बचाने सिंह का सामना करता है, उसी प्रकार हे गुण रत्नाकर। मुझ मे शक्ति नही है फिर भी आपकी भक्ति ही मुझे स्तुति करने के लिए बाध्य कर रही है। उससे प्रेरित हुआ मैं स्तुति कर रहा हूॅ।

अल्प-श्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम,
त्वद् भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान् माम्।
यत् कोकिल किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र चारु कलिका निकरैक हेतु॥6॥

अन्वयार्थ

अल्प श्रुत=अल्प ज्ञानी, **श्रुतवता**=श्रुतधर विद्वानो की, **परिहास धाम**=हसी का पात्र, **माम्**=मुझको, **त्वद् भक्ति एव**=आपकी भक्ति ही, **वलात्**=जवरन, **मुखरी कुरुते**=वाचाल कर रही है, **किल**=निश्चय ही, **मधौ**=वसन्त ऋतु मे, **यत्**

मधुरं विरौति=जो मधुर स्वर मे कुहुकती है, कोकिल.=कोयल, तत=वह, चारु=सुन्दर, आम्रकलिका=आम्र मजरी का, निकर=समुदाय ही, एक हेतु =एक कारण है।

भावार्थ

हे परमानन्द धाम ! जब वसन्त ऋतु मे आम्रो के मौर आते है, तव कोयल उस मंजरी को पाकर स्वयमेव बोलने लग जाती है मधुर वाणी, उसी प्रकार हे आकर्षण केन्द्र ! आपकी भक्ति ही आपके स्तुति के लिए वाचाल बना रही है अन्यथा मै अल्प ज्ञानी हूँ और ज्ञानियो के समक्ष उपहास का पात्र हूँ।

त्वत् संस्तवेन भव संतति सन्निबद्धं
पापं क्षणात् क्षय मुपैति शरीर भाजाम्।
आक्रान्त लोक-मलि नील-मशेष-माशु
सूर्याशु भिन्न-मिव शार्वर-मन्धकारम्॥7॥

अन्वयार्थ

ावेन=आपके स्तवन से, शरीर भाजाम्=देहधारी प्राणियो के, भव परम्परा से, सन्निबद्धं=बधे हुए, पापं=पाप, क्षणात् क्षयं उपैति=क्षण हो जाते है, आक्रान्त लोकं=सम्पूर्ण लोक मे फैले हुए, अलि के समान काला, शार्वरं=रात्रि के, अशेषम्=सम्पूर्ण, ाधकार को, आशु=शीघ्रता से, सूर्याशु=सूर्य की किरणो से, भिन्न भेन्न हो जाता है उसी तरह।

ा पति ! आपकी स्तुति का प्रभाव अलौकिक है, अनादि काल के न्तरो से सचित हुए पाप कर्म प्राणियो के क्षण भर मे आपकी स्तुति से नष्ट हो जाते हैं। जैसे सम्पूर्ण जगत मे व्याप्त हुआ भौंरे के समान ाला अमावस्या के रात्रि का घोर अधकार प्रात.काल के सूर्य की जस्वी किरणो के आते-आते ही नष्ट हो जाता है।

मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु धियाऽपि तव प्रभावात्।
चेता हरिष्यति सतां नलिनी-दलेपु
मुक्ता फल-द्युति मुपैति ननूद विन्दु ॥8॥

अन्वयार्थ

नाथ=हे नाथ !, इति मत्वा=ऐसा मानकर, तनुधिया अपि मया=थोडी बुद्धि होने पर भी मैने, इद तव संस्तवनं=यह आपका स्तोत्र, आरभ्यते=प्रारम्भ किया जाता है, तव प्रभावात्=आपके प्रभाव से, सतां चेत =सज्जनो के चित्त को, हरिष्यति=हरेगा, ननु उद बिन्दु =निश्चय जल की बूॅद, नलिनी=कमलिनी के, दलेषु=पत्तो पर, मुक्ता फल द्युतिं=मोती की चमक को, उपैति=प्राप्त होता है ।

भावार्थ

हे त्रिलोकीनाथ ! जल की बूॅद कमलिनी के पत्तो पर पडी हुई मोती सदृश शोभा पाती है, उसी प्रकार हे अद्वितीय महिमन् ! मुझ अल्पज्ञ की यह साधारण रचना आपके प्रभाव से सज्जन पुरुषो के चित्त को अपनी ओर आकर्षित करने वाली अवश्यमेव बनेगी । यह जानकर ही मै मन्द बुद्धि के सहारे आपका स्तवन रचने तैयार हुआ हूॅ ।

आस्तां तव स्तवन-मस्त समस्त दोषं
त्वत् संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्र किरण. कुरुते प्रभैव
पद्मा करेषु जल-जानि विकास भॉजि ॥9 ॥

अन्वयार्थ

तव=तुम्हारा, अस्त समस्त दोषं=सर्व दोषो से रहित, स्तवनं=स्तवन को, दूरे आस्तां=दूर ही रहे, त्वत् सन् कथा-मपि=तुम्हारी चर्चा भी, जगतां दुरितानि हन्ति=ससार के पापो को नष्ट कर देती है, सहस्र किरण =सूर्य, दूरे=दूर रहे, प्रभा एव=प्रभा ही, पद्मा करेषु जल-जानि=सरोवर के कमलो को, विकास भॉजि कुरुते=विकसित कर देती है ।

भावार्थ

हे अखिलेश्वर ! सूर्योदय होना तो दूर रहे, उसकी अरुण आभा ही सरोवर के सरोजो को विकसित कर देती है, उसी प्रकार हे पतित पावन प्रभो ! आपका स्तवन तो दूर आपकी सम्यक् कथा, नाम, गुण चर्चा भी सासारिक जनो के पाप कर्मो को नष्ट कर देती है, तो इस स्तवन से पाप नष्ट होवेगे ही इसमे जरा भी सदेह नही है ।

नात्यद् भुतं भुवन भूषण ! भूतनाथ !
भूतैर् गुणैर भुवि भवन्त-मभिष्टु वन्त ॥

तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन कि वा
भूत्याश्रितं य इह नात्म समं करोति ॥10 ॥

अन्वयार्थ

भुवन भूषण=हे त्रिलोक भूषण, भूतनाथ=हे प्राणियो के स्वामिन्, भूतै गुणै:=विद्यमान यथार्थ गुणो से, भवन्तं अभिष्टुवन्त:=आपकी स्तुति करने वाले, भुवि=पृथ्वी पर, भवत.=आपके, तुल्या भवन्ति=समान हो जाते है, अति अद्भुतं न=अति आश्चर्यजनक नही, वा ननु=अथवा निश्चय से, तेन किं=उससे क्या, य. इह=जो इस लोक मे, आश्रितं=अपने आश्रित सेवक को, भूत्या=वैभव से, आत्म समं न करोति=अपने समान नही करता है।

भावार्थ

हे जगत् भूषण! हे जगन्नाथ! जो भव्य पुरुष आप की स्तुति करते है वे सज्जन आपके समान उच्चावस्था को पा लेते है इसमे आश्चर्य उत्पन्न करने वाली कोई बात नही है, ससार मे जो स्वामी अपने अधीन सेवारत सेवक को ऐश्वर्य देकर अपने सदृश नही बना सकता, उस मालिक की सेवा से क्या लाभ?

दृष्टवा भवन्त मनिमेष विलोकनीयं
नान्यत्र तोष-मुपयाति जनस्य चक्षु.।
पीत्वा पय. शशिकर द्युति दुग्ध सिन्धो.
क्षारं जलं जल निधे-रसितुं क: इच्छेत् ॥11 ॥

अन्वयार्थ

अनिमेष विलोकनीयं=अपलक दृष्टि से देखने योग्य, भवन्तं दृष्टवा=आपको देखकर, जनस्य चक्षु=मानव की ऑखे, अन्यत्र=दूसरी जगह, तोषं न उपयाति=सतोष को नही पाती है, दुग्ध सिन्धो=क्षीर सागर के, शशिकर द्युति=चन्द्र किरण सम शुभ्र काति वाले, पय पीत्वा=जल को पीकर, क जलनिधे क्षारं=कौन सागर के खारे, जलं=जल को, असितुं इच्छेत्=पीने के लिए इच्छा करेगा।

भावार्थ

हे दिव्य स्वरूप भगवन्! पलक झपकाए बिना एकटक देखने योग्य आपके अनिर्वचनीय स्वरूप को जिसने देख लिया, उनकी ऑखे अन्य देवो के दर्शन मे सतुष्टि नही पाती है। वे आपके अलौकिक सौन्दर्य दर्शन की प्यासी आपको खोजती रहती है। हे आनन्द सागर! किसी ने क्षीर सागर के शुभ्र मधुर

जल का पान कर लिया हो वह लवण समुद्र का खारा जल पीने की इच्छा केसे कर सकता है ?

यै शांत राग रुचिभि परमाणुभिस्त्वं
निर्मापित-स्त्रि भुवनैक ललाम भूत।
तावन्त एव खलु तेप्य-णव. पृथिव्यां
यत्ते समान-मपरं नहि रूप मस्ति ॥12 ॥

अन्वयार्थ

त्रिभुवनैक ललाम भूत=हे त्रिभुवन के अनुपम अलकार, यै.=जिन, शांत राग रुचिभि.=शात भाव रस की रुचि वाले, परमाणुभि.=परमाणुओ से, त्वं निर्मापित =तुम्हारा निर्माण हुआ है, खलु ते अणव =निश्चय ही वे परमाणु, अपि तावन्त=भी उतने, एव=ही थे, यत् पृथिव्यॉ=क्योकि भूतल पर, ते समानं=तुम्हारे समान, अपरम्=दूसरा, रूपं नहि अस्ति=रूपवाला नही है।

भावार्थ

हे त्रिभुवन के अद्वितीय अलकार। शात प्रकृति, सौम्य स्वभाव वाले जिन सर्वोत्तम श्रेष्ठ मनोहर परमाणुओ से आपका शरीर बना है वे परमाणु इस जगति तल पर उतने ही थे, क्योकि आपके समान दूसरा कोई भी रूप सम्पदा का स्वामी नही है। यदि अन्य परमाणु होते तो दूसरा कोई रूप क्या नहीं बन जाता ?

वक्त्रं क्व ते सुर नरोरग नेत्र हारि,
नि.शेष निर्जित जगत्त्रि-तयोपमानम्।
बिम्बं कलक मलिनं क्व निशा करस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डु पलाश कल्पम् ॥13 ॥

अन्वयार्थ

सुर नर उरग नेत्र हारि=देव मनुष्य और भवनवासी नाग कुमार आदि के नेत्रो को हरने वाले, नि शेष निर्जित=सम्पूर्ण जीत लिया, जगत् त्रि तय उपमानं=तीन जगत की उपमाओ को, ते वक्त्र=तुम्हारा मुख, क्व=कहॉ, निशाकरस्य=चन्द्रमा का, कलंक मलिनं=काले धब्बो से मलिन, बिम्बं क्व=मण्डल कहॉ, यत् वासरे=जो दिन मे, पाण्डु पलाश कल्पं=फीके ढाक के पत्ते के समान, भवति=होता है।

भावार्थ

हे त्रिलोक नेत्रहारि ! आपने ऊर्ध्व लोक के देव, देवेन्द्रो, मध्य लोक के नर-नरेन्द्रो, अधोलोक के नागेन्द्र आदि आपके दिव्य सौम्य मुख चन्द्र का दर्शन कर अतीव प्रसन्नता का अनुभव करते है। इनके नेत्रो के प्रवल आकर्षण केन्द्र एकमात्र भगवन् आप है। ससार की समस्त उपमाएँ आपके लिए अपूर्ण है, कहाँ आपका शुभ्र ज्योत्सना से परिपूर्ण एकसा मुख चन्द्र और कहाँ काले धब्बो से युक्त चन्द्र मण्डल। वह दिन मे ढाक के पीले पत्तो के समान फीका पड जाता है अर्थात् कांतिहीन बन जाता है।

सम्पूर्ण मण्डल शशांक कला कलाप,
शुभ्रा गुणास् त्रिभुवनं तव लंघयन्ति।
ये संश्रितास् त्रिजगदीश्वर ! नाथ मेकं,
कस्तान् निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥14 ॥

अन्वयार्थ

त्रिजगदीश्वर=हे तीन लोक के ईश्वर, **सम्पूर्ण मण्डल शशांक कला कलाप**=पूर्ण चन्द्र मण्डल की कलाओ के सदृश, **शुभ्रा.**=उज्जवल, **तव गुणा.**=आपके गुण, **त्रिभुवनं लंघयंति**=तीन लोक को लांघ रहे है, **ये एकं**=जिन्होने एक, **नाथं संश्रिता:**=स्वामी का आश्रय लिया, **तान् यथेष्टं**=उन्हे स्वेच्छानुसार, **संचरत.**=विचरण करते हुए, **क**=कौन, **निवारयति**=रोकता है ?

भावार्थ

हे त्रिलोक स्वामिन् ! पूर्ण कला वाले चन्द्र के समान आपके निर्मल गुण तीन लोक मे सर्वत्र फैले हुए है। उन गुणो ने एकमात्र आप की ही शरण ली है, वे इस सृष्टि मे स्वेच्छानुसार विचरण करे तो उन्हे कौन रोक सकता है ? अर्थात् कोई नही रोक सकता।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांग नाभिर्
नीतं मनागपि मनो न विकार मार्गम्।
कल्पानत काल मरुता चलिता चलेन,
किं मन्दराद्रि शिखरं चलितं कदाचित् ? ॥15 ॥

अन्वयार्थ

यदि=अगर, ते मन=तुम्हारा मन, त्रिदशांग नाभि.=अप्सराओ के द्वारा, मनाक् अपि=किंचित् भी, विकार मार्ग=विकार भाव को, न नीतं=प्राप्त नहीं

हुआ, अत्र किं=इसमे क्या, चित्रं=आश्चर्य है, कल्पान्त काल=प्रलय काल के, मरुता=पवन से, चलिता चलेन=पर्वतो को चलायमान करने वाला, कि मंदराद्रि शिखरं=सुमेरु का शिखर, कदाचित्=कभी, चलितं=चलायमान हुआ।

भावार्थ

हे वीतराग भगवन्! स्वर्गलोक की अप्सराओ ने काम वासना को उत्तेजित करने वाले वैषयिक हाव भाव विलासो से आपको विचलित करने का अथक प्रयास किया परन्तु आप अपने लक्ष्य और ध्यान साधना से चलित नही हुए। वैभाविक भाव मे नही बहे तो इसमे क्या आश्चर्य है, पर्वतो को चलायमान करने वाला प्रलयकाल का प्रचण्ड वायु वेग से क्या सुमेरु का पर्वत कभी चलायमान हुआ ?

निर्धूम वर्ति-रप वर्जित तैल पूर·
कृत्स्नं जगत्-त्रय-मिदं प्रकटी करोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिता चलानां
दीपोऽपरस् त्वमसि नाथ जगत्प्रकाश. ।।16 ।।

अन्वयार्थ

नाथ=हे स्वामिन्, त्वं निर्धूम वर्तिः=आप धूएँ वाली बत्ती से रहित, अपवर्जित तैलपुर.=तैल पूर्ति से रहित होने पर भी, इद कृतस्नं=इस सम्पूर्ण, जगत्त्रयं प्रकटी करोषि=त्रिभुवन को प्रकाशित कर रहे हो, चलिता चलानां मरुतां=पर्वतो को कपायमान करने वाले पवन की, न गम्य =गति नही है, जातु=कभी भी, जगत्प्रकाश =हे जगत प्रकाशक, अपर दीप असि=अपूर्व दीप हो।

भावार्थ

हे परम ज्योति स्वरूप परमात्मन्! आप धुएँ वाली बत्ती से रहित और तैल पूर्ति की अपेक्षा से सर्वथा विहीन है, फिर भी आप त्रिभुवन को पूर्णत प्रकाशित कर रहे हो, मिट्टी के दीपक को वायु का साधारण झोका बुझा सकता है मगर पर्वतो को चलायमान करने वाला पवन का प्रचण्ड वेग का असर भी आप पर नही होता है, हे जगत्प्रकाशक! आपके आत्म दीप मे केवल ज्ञान की अखण्ड ज्योति एक सरीखी जलती रहती है, अत. आप अपूर्व दीप हो।

नास्त कदाचि दुपयासि न राहु गम्य,
स्पष्टी करोषि सहसा युग पज्ज गन्ति।
नाम्भो धरो-दर निरुद्ध महा-प्रभाव,
सूर्याति-शायि-महिमासि मुनीन्द्र लोके ।।17 ।।

भावार्थ

हे त्रिलोक नेत्रहारि! आपने ऊर्ध्व लोक के देव, देवेन्द्रो, मध्य लोक के नर-नरेन्द्रो, अधोलोक के नागेन्द्र आदि आपके दिव्य सौम्य मुख चन्द्र का दर्शन कर अतीव प्रसन्नता का अनुभव करते है। इनके नेत्रो के प्रबल आकर्षण केन्द्र एकमात्र भगवन् आप है। संसार की समस्त उपमाएँ आपके लिए अपूर्ण है, कहाँ आपका शुभ्र ज्योत्सना से परिपूर्ण एकसा मुख चन्द्र और कहाँ काले धब्बो से युक्त चन्द्र मण्डल। वह दिन मे ढाक के पीले पत्तो के समान फीका पड जाता है अर्थात् कातिहीन बन जाता है।

सम्पूर्ण मण्डल शशांक कला कलाप,
शुभ्रा गुणास् त्रिभुवनं तव लंघयन्ति।
ये संश्रितास् त्रिजगदीश्वर! नाथ मेकं,
कस्तान् निवारयति संचरतो यथेष्टम्॥14॥

अन्वयार्थ

त्रिजगदीश्वर=हे तीन लोक के ईश्वर, **सम्पूर्ण मण्डल शशांक कला कलाप**=पूर्ण चन्द्र मण्डल की कलाओ के सदृश, **शुभ्राः**=उज्जवल, **तव गुणाः**=आपके गुण, **त्रिभुवनं लंघयंति**=तीन लोक को लाघ रहे है, **ये एकं**=जिन्होने एक, **नाथं संश्रिताः**=स्वामी का आश्रय लिया, **तान् यथेष्टं**=उन्हे स्वेच्छानुसार, **संचरतः**=विचरण करते हुए, **कः**=कौन, **निवारयति**=रोकता है?

भावार्थ

हे त्रिलोक स्वामिन्! पूर्ण कला वाले चन्द्र के समान आपके निर्मल गुण तीन लोक मे सर्वत्र फैले हुए है। उन गुणो ने एकमात्र आप की ही शरण ली है, वे इस सृष्टि मे स्वेच्छानुसार विचरण करे तो उन्हे कौन रोक सकता है? अर्थात् कोई नही रोक सकता।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांग नाभिर्
नीतं मनागपि मनो न विकार मार्गम्।
कल्पानत काल मरुता चलिता चलेन,
किं मन्दराद्रि शिखरं चलितं कदाचित्? ॥15॥

अन्वयार्थ

यदि=अगर, ते मन=तुम्हारा मन, त्रिदशांग नाभिः=अप्सराओ के द्वारा, मनाक् अपि=किंचित् भी, विकार मार्ग=विकार भाव को, न नीतं=प्राप्त नही

हुआ, **अत्र किं**=इसमे क्या, **चित्रं**=आश्चर्य है, **कल्पान्त काल**=प्रलय काल के, **मरुता**=पवन से, **चलिता चलेन**=पर्वतो को चलायमान करने वाला, **कि मंदराद्रि शिखरं**=सुमेरु का शिखर, **कदाचित्**=कभी, **चलितं**=चलायमान हुआ।

भावार्थ

हे वीतराग भगवन्! स्वर्गलोक की अप्सराओ ने काम वासना को उत्तेजित करने वाले वैषयिक हाव भाव विलासो से आपको विचलित करने का अथक प्रयास किया परन्तु आप अपने लक्ष्य और ध्यान साधना से चलित नही हुए। वैभाविक भाव मे नहीं बहे तो इसमे क्या आश्चर्य है, पर्वतो को चलायमान करने वाला प्रलयकाल का प्रचण्ड वायु वेग से क्या सुमेरु का पर्वत कभी चलायमान हुआ?

निर्धूम वर्ति-रप वर्जित तैल पूरः
कृत्स्नं जगत्-त्रय-मिदं प्रकटी करोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिता चलानां
दीपोऽपरस् त्वमसि नाथ जगत्प्रकाश. ॥16॥

अन्वयार्थ

नाथ=हे स्वामिन्, **त्वं निर्धूम वर्ति**=आप धूएँ वाली बत्ती से रहित, **अपवर्जित तैलपुरः**=तैल पूर्ति से रहित होने पर भी, **इदं कृतस्नं**=इस सम्पूर्ण, **जगत्त्रयं प्रकटी करोषि**=त्रिभुवन को प्रकाशित कर रहे हो, **चलिता चलानां मरुता**=पर्वतो को कपायमान करने वाले पवन की, **न गम्य**=गति नही है, **जातु**=कभी भी, **जगत्प्रकाश.**=हे जगत प्रकाशक, **अपर· दीप असि**=अपूर्व दीप हो।

भावार्थ

हे परम ज्योति स्वरूप परमात्मन्। आप धुएँ वाली बत्ती से रहित और तैल पूर्ति की अपेक्षा से सर्वथा विहीन है, फिर भी आप त्रिभुवन को पूर्णत प्रकाशित कर रहे हो, मिट्टी के दीपक को वायु का साधारण झोका वुझा सकता है मगर पर्वतो को चलायमान करने वाला पवन का प्रचण्ड वेग का असर भी आप पर नहीं होता है, हे जगत्प्रकाशक। आपके आत्म दीप मे केवल ज्ञान की अखण्ड ज्योति एक सरीखी जलती रहती है, अत आप अपूर्व दीप हो।

नास्तं कदाचि दुपयासि न राहु गम्य,
स्पष्टी करोषि सहसा युग पज्ज गन्ति।
नाम्भो धरो-दर निरुद्ध महा-प्रभाव,
सूर्याति-शायि-महिमासि मुनीन्द्र लोके ॥17॥

अन्वयार्थ

मुनीन्द्र=हे मुनियो के इन्द्र !, कदाचित्=कभी भी, न अस्तं उपयासि=न अस्त होते हो, न राहुगम्य.=न राहु द्वारा ग्रसित होते हो, न अम्भोधरोदर=न मेघ उदर से, निरुद्ध महाप्रभाव=अवरुद्ध हो सकता है महान तेज, युगपत्=एक साथ, जगन्ति सहसा=तीनो लोक को एकदम, स्पष्टीकरोषि=साक्षात्कार करते हो, लोके=संसार मे, सूर्यातिशायि=सूर्य से बढकर, महिमा असि=महिमा वाले हो।

भावार्थ

हे त्रय लोक दिवाकर! हे मुनीनाथ! आप सूर्य से अत्यधिक बढकर महिमाशाली है, सूर्य प्रात.काल उदय होता है और सायंकाल अस्त हो जाता है पर आपका केवल ज्ञान रूपी सूर्य कभी भी अस्त नही होता है, सूर्य को राहु ग्रस लेता है, परन्तु आपके आत्मरुपी सूर्य को कोई भी भौतिक-वैभाविक शक्ति किंचित् भी दबा नही सकती, सूर्य परिमित क्षेत्र को प्रकाशित करता है मगर आप ऊर्ध्व, मध्य, अधो रूप तीनो लोक को प्रकाशित करते हो। सूर्य मेघ के उदर मे समा जाता है, कुछ समय के लिए किन्तु आपका अमित तेज ज्यो का त्यो बरकरार रहता है।

नित्योदयं दलित मोह महान्धकारं,
गम्यं न राहु वदनस्य न वारि दानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्ज मनल्प कान्ति,
विद्यो तयज्-जगद पूर्व शशांक विम्बम्।।18।।

अन्वयार्थ

नित्योदयं=सदा काल उदय को प्राप्त, दलित मोह महान्धकारं=मोह रूपी महान्धकार को नष्ट करने वाला, राहु वदनस्य न गम्यं=न राहु के मुख को जाता है, न वारिदानां=न मेघो मे छिपता है, अनल्प कांति=अत्यन्त दीप्तिवान, जगत यत् विद्योत=सम्पूर्ण विश्व को जो प्रकाशित करता हुआ, तव मुखाब्जं=आपका मुख कमल, अपूर्व शशांक विम्बं=अलौकिक विलक्षण चन्द्र के विम्ब के रूप मे, विभ्राजते=शोभायमान होता है।

भावार्थ

हे सौम्य सुधाकर। आपका अलौकिक ज्योतिर्मय मुख कमल अपूर्व चन्द्र मण्डल के रूप मे अखिल सृष्टि को आलोकित करता हुआ चमकता है। आपका मुख चन्द्र सदैव उदित ही रहता है। भक्त हृदय के मोह रूप घोर अंधकार को

नष्ट करता हे, वह राहु के मुख मे कभी प्रवेश नहीं करता है और न ही कभी बादलो मे छिपता ही है।

किं शर्व-रीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा?
युष्मन् मुखेन्दु दलितेषु तमस्सु नाथ!
निष्पन्न शालि वन शालिनि जीव लोके
कार्य कियज्-जल धरैर् जलभार नम्रै ॥19॥

अन्वयार्थ

नाथ=हे स्वामिन्!, युष्मन् मुखेन्दु=आपके मुख चन्द्र से, दलितेषु तमस्सु=अधकार नष्ट हो जाने पर, शर्वरीषु=रात्रि मे, शशिना=चन्द्रमा से, वा अह्नि=अथवा दिनो मे, विवस्वता=सूर्य से, किं=क्या प्रयोजन? निष्पन्न शालि=पैदा हुए धान्य के, वन शालिनि=वनो से शोभायमान, जीव लोके=संसार मे, जलभार नम्रै =जल के भार से झुके हुए, जल धरैः=बादलो से, कियत्=कितना, कार्य=काम रहता है।

भावार्थ

हे अद्भुत ज्योतिधर! आपके दीप्तिवान मुख चन्द्र ने अधकार को नष्ट कर सर्वलोक को आलोक से भर दिया, तब रात्रि मे चन्द्रमा और दिन मे सूर्य की क्या आवश्यकता है? हे प्रकाश पुज नाथ। परिपक्व धान्यो से वन श्री शोभायमान हो उसके बाद जल से परिपूर्ण झुके हुए मेघो का कितना काम रहता है? अर्थात् क्या लाभ?

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैव तथा हरि हरादिषु नायकेषु।
तेज स्फरन् मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैव तु काच शकले किरणा कुलेऽपि ॥20॥

अन्वयार्थ

त्वयि=आप मे, कृतावकाशं=किया अवकाश, ज्ञानं=ज्ञान, यथा विभाति=जिस प्रकार शोभित होता है, एवं तथा=वैसा ही, हरि हरादिषु नायकेषु=विष्णु, महेश आदि देवो मे, न=नही, यथा स्फुरन् मणिषु=जैसा चमकती मणियो मे, तेज महत्त्वं याति=तेज महत्त्व को पाता है, तु एवं=वैसा महत्त्व तो, किरणा कुले अपि=रश्मियो से व्याप्त होने पर भी, काच शकले=काच के टुकडो मे, न याति=नहीं पाता।

भावार्थ

हे दिव्य ज्ञानालोक पुञ्ज! भगवन् जिस प्रकार आप मे सर्व द्रव्य और सर्व पर्याय की त्रिकालिक अवस्था को प्रकट करने वाला केवल ज्ञान विकसित हुआ शोभायमान हो रहा है, वैसा विष्णु महादेव आदि देवो मे नही हो रहा है क्योकि प्रकाशमान तेज बहुमूल्य रत्नो मे मिलता है जैसा, वैसा कॉच के टुकडो मे कहॉ? चाहे वे सूर्य किरणो मे पडे कितने ही क्यो न चमकते हो?

मन्ये वरं हरि हरा-दय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोष-मेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ! भवान्तरेऽपि ॥21 ॥

अन्वयार्थ

नाथ=हे स्वामिन्, **हरि हरा दयः एव**=विष्णु महादेव आदि ही, **दृष्टाः वरं मन्ये**=देखे गए श्रेष्ठ मानता हूॅ, **येषु दृष्टेषु**=जिनको देख लेने पर, **हृदयं त्वयि**=हृदय आप मे, **तोषं एति**=सतोष पाता है, **भवता वीक्षितेन**=आपको देखने से, **किं**=क्या, **येन भुवि अन्यः**=जिससे भूमण्डल पर अन्य, **कश्चित भवान्तरे**=कोई देव भवान्तर मे, **अपि मनो न हरति**=भी मन को नही हरण कर सकता।

भावार्थ

हे देवाधिदेव त्रिलोक स्वामिन्! आपको देखने से पहले मै हरि हर आदि देवो को देखना अच्छा मानता हूॅ, उनको देखने के बाद ही हृदय आप मे सन्तुष्ट हो जाता है, आपको देखने से क्या लाभ? जिससे ससार मे अन्य कोई देव इस जन्म मे तो क्या जन्मान्तर मे भी मन को अपनी ओर खीच नही सकता?

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्त्र रश्मि
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुर दंशु जालम् ॥22 ॥

अन्वयार्थ

स्त्रीणां शतानि=सैकड़ो स्त्रियॉ, **शतश पुत्रान्**=सैकडो पुत्रो को, **जनयन्ति**=जन्म देती है, **त्वदुपमं सुतं**=आप जैसे पुत्र को, **अन्या जननी**=अन्य कोई माता, **न प्रसूता**=उत्पन्न नही कर सकी, **भानि**=नक्षत्रो को, **सर्वा. दिश**=सब दिशाएं,

दधति=धारण करती हे, स्फुर दंशु जालं=देदीप्यमान किरणो के समूह वाले, सहस्र रश्मि=सूर्य को, प्राची एव दिग्=पूर्व ही दिशा, जनयति=जन्म देती है ।

भावार्थ

हे महामगलमय प्रभो ! ससार मे अनेको स्त्रियॉ अनेक पुत्रो को जन्म देने की अधिकारी बनती है परन्तु आप जैसे परम प्रतापी अलौकिक दिव्य पुत्र रत्न को अन्य किसी माता ने जन्म नही दिया ! क्योकि सभी दिशाऍ नक्षत्र एव ताराओ को धारण करती है, मगर सूर्य को केवल एक पूर्व दिशा ही प्रकट करती है ।

त्वामा-मनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्य वर्ण ममलं तमसः परस्तात् ।
त्वामेव सम्य गुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिव. शिव पदस्य मुनीन्द्र ! पन्थाः ॥23 ॥

अन्वयार्थ

मुनीन्द्र=हे मुनियो के नाथ, मुनय.=मुनिगण, त्वां=तुम्हे, परमं पुमांसं=परम पुरुष, आदित्य वर्ण=सूर्य सदृश तेजस्वी, अमलं=मल रहित, तमस. परस्तात्=अधकार से परे, आमनन्ति=मानते है, त्वां एव=तुमको ही, सम्यक् उपलभ्य=भलीभॉति प्राप्त करके, मृत्युं जयंति=मृत्युजय हो जाते है, शिव पदस्य=मोक्ष पद का, अन्य·=दूसरा, शिव. पन्थाः न=कल्याणकारी पथ नही है ।

भावार्थ

हे शिव पथ प्रणेता ! श्रेष्ठ सत पुरुष आपको सूर्य से अधिक तेजस्वी, स्फटिक रत्न के समान निर्मल, मिथ्यात्व मोहान्धकार से रहित परम पुरुष मानते है, वे आपका अपने अन्तःकरण मे अच्छी तरह से दर्शन पाकर मृत्युजयी वन जाते है । इसलिए आपके अतिरिक्त अन्य कोई दूसरा मोक्ष का प्रशस्त कल्याणकारी मार्ग नही है ।

त्वा-मव्ययं विभु-मचिन्त्य-मसंख्य-माद्य
व्रह्माण-मीश्वर-मनन्त-मनंग-केतुम् ।
योगीश्वरं विदित योग-मनेक-मेकं
ज्ञान स्वरूप-ममलं प्रवदन्ति सन्त ॥24 ॥

अन्वयार्थ

सन्तः त्वां=सन्त पुरुष आपको, **अव्ययं**=क्षय रहित, **विभुं**=उत्कृष्ट ऐश्वर्यवान्, **अचिंत्यं**=कल्पनातीत, **असंख्यं**=असख्य, **आद्यं**=आदि पुरुष, **ब्रह्माणं**=ब्रह्मा, **ईश्वरं**=ईश्वर, **अनन्तं**=अन्त रहित, **अनंग केतुम्**=कामदेव के नाशार्थ केतु, **योगीश्वरं**=योगियो के स्वामी, **विदितयोगं**=योगवेत्ता, **अनेकं**=अनेक, **एकं**=एक, **ज्ञान स्वरूपं**=ज्ञानमय, **अमलं प्रवदन्ति**=निर्मल कहते है।

भावार्थ

हे अध्यात्म पथ सर्जेता! संसार के विशिष्ट ज्ञानी, सन्त, महात्मा आपको अक्षय, परम ऐश्वर्य सम्पन्न (व्यापक), चिन्तन मे न आने वाले असख्य गुणो के धारक, आप अवसर्पिणी काल के आदि तीर्थकर, जीवन निर्वाह की कलाओ का शिक्षण देने एवं मोक्ष मार्ग के विधाता होने से ब्रह्मा है, अनन्त आत्मिक ऐश्वर्य के स्वामी होने से ईश्वर है, आपके स्वरूप का कही अन्त न होने से अनन्त है, काम देव के संहार हेतु केतु ग्रह के समान है, योग और योगियो के स्वामी होने से आप योगीश्वर है। आप मनादि योगो के ज्ञाता एवं दृष्टा है, गुण पर्याय की अपेक्षा से आप अनेक है और द्रव्य की अपेक्षा आप एक है, ज्ञान स्वरूप वाले है, निर्मल है इस प्रकार आपका वर्णन करते है।

बुद्धस् त्वमेव विबुधार्चित! बुद्धि बोधात्
त्वं शंकरोऽसि भुवन-त्रय शंकर त्वात्।
धाताऽसि धीर! शिव मार्ग विधेर् विधानात्
व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्त-मोऽसि ॥25 ॥

अन्वयार्थ

विबुधार्चित=विद्वानो द्वारा पूजित, **बुद्धि बोधात्**=केवल ज्ञानी होने से, **त्वं एव बुद्धः**=आप ही बुद्ध है, **भुवन त्रय**=तीन लोक के, **शंकरत्वात्**=सुख या कल्याण करने वाले होने से, **त्वं शंकरः असि**=आप शंकर हो, **धीर**=हे धीर, **शिव मार्ग**=मोक्ष मार्ग के, **विधेः विधानात्**=विधि का विधान करने से, **धाता असि**=विधाता हो, **त्वं एव**=आप ही, **भगवन्**=हे भगवन्, **व्यक्तं**=प्रकट, स्पष्टत., **पुरुषोत्तमः असि**=पुरुषोत्तम हो।

भावार्थ

हे त्रिलोक पूजित प्रभो। आप मे बौद्धिक विकास पूर्णत होने से आप ही जाग्रत है अर्थात् बुद्ध है, त्रिभुवन मे सुख शांति एव कल्याणकारी वीतराग भाव का सचार करने से अर्थात् वैर विरोध कषाय को शांत करने वाले होने से

आप ही शकर है। मोक्ष मार्ग के रत्नत्रय रूप विधि का विधान करने से आप विधाता है। इस ससार मे आप स्पष्टत पुरुषो मे उत्तम नारायण है।

तुभ्यं नमस् त्रिभुवनार्त्ति हराय नाथ।
तुभ्यं नम क्षिति तलामल भूषणाय!।
तुभ्यं नमस्त्रि जगत परमेश्वराय!
तुभ्यं नमो जिन! भवोदधि शोषणाय ॥26 ॥

अन्वयार्थ

नाथ=हे स्वामिन्!, त्रिभुवनार्ति हराय=त्रिलोक की पीडा हरने वाले, तुभ्यं नम =तुम्हे नमस्कार है, क्षिति तल अमल=हे भूतल के निर्मल, भूषणाय=अलकार, तुभ्यं नम.=तुमको नमस्कार, त्रिजगतः परमेश्वराय तुभ्यं नम.=हे तीन जगत के परमेश्वर आपको नमस्कार, भवोदधि शोषणाय=जन्म रूप भव जल को सोखने वाले, जिन=हे जिनेश्वर, तुभ्यं नम.=तुम्हे नमस्कार है।

भावार्थ

हे तिरण तारण प्रभो! आप तीन लोक की व्यथा-यातनाओ को हरने वाले है आप इस भूतल के निर्मल उज्ज्वल अलकार हो अर्थात् हम सव की शोभा है सुख आनन्द रूप हो, ससार मे श्रेष्ठ ऐश्वर्य के स्वामी है, हे देवाधिदेव जिनेश्वर! आप ससार के जन्म रूप सागर को सुखाने वाले है, इसलिए आपको हमारा नमस्कार बारम्बार है।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैर शेषै,
त्वं संश्रितो निरवकाश तया मुनीश।
दोषैरुपात्त विविधाश्रय जात गर्वै,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिद-पीक्षितोऽसि ॥27 ॥

अन्वयार्थ

मुनीश=हे मुनीश्वर, यदि त्वं=अगर आप, निरवकाशतया=अवकाश रहित उन. अशेषै. गुणैः=समस्त गुणो से, संश्रित=आश्रित हो गए, अत्र क विस्मय=इसमे कौनसा आश्चर्य है, विविधाश्रय=अनेक स्थानो पर आश्रय, उपात्त=पा लेने से, जात गर्वै=गर्वित हुए, दौषे=दोषो ने, कदाचित अपि=कभी भी, स्वप्नान्तरे अपि=स्वप्नावस्था मे भी, नाम न ईक्षित असि=आपकी ओर नही देखे गए तो कौन सा आश्चर्य है।

भावार्थ

हे परम आराध्य प्रभुवर ! संसार के समस्त सद् सुगुणो ने आपमे आश्र पाया है लेकिन अवगुणो को आप मे किंचित भी स्थान न मिलने और सर्व स्थान पाने से अभिमानवश स्वप्न मे भी कभी आपको देखने न आए, न ना सुनना चाहे तो इसमे आश्चर्य की बात कौन सी है? वे क्यो आएगे अनाश्र देने वाले के पास?

उच्चै-रशोक तरु संश्रित मुन्मयूख-
माभाति रूप-ममलं भवतो नितान्तम्।
स्पष्टो-ल्लसत्किरण-मस्त तमो वितानं
बिम्बं रवेरिव पयोधर पार्श्व वर्ति ॥28 ॥

अन्वयार्थ

उच्चैः अशोक तरु संश्रितं=ऊँचे अशोक वृक्ष के नीचे स्थित, **उन्मूयूखं**=ऊपर की ओर देदीप्यमान किरणो को फैलाने वाला, **भवतः अमलं रूपं**=आपका निर्मल रूप, **स्पष्टः उल्लसत् किरणं**=स्पष्टत. चमकती किरणो वाले, **अस्त तमो वितानं**=अंधकार के विस्तार के नाशक, **पयोधर पार्श्व वर्ति**=मेघ के समीप रहे, **रवेः बिम्बं इव**=सूर्य विम्ब गोले की तरह, **नितान्तं आभाति**=अत्यन्त शोभित होता है।

भावार्थ

हे शोक विमुक्त प्रभो ! अशोक वृक्ष के नीचे ऊपर की ओर दिव्य उज्ज्वल किरणो को विकीर्ण करने वाला आपका निर्मल रूप अत्यधिक भव्य मालूम होता है। जैसे कि स्पष्ट रूप से चमकती किरणो वाला और अधकार के समूह को नष्ट करने वाला सूर्य मण्डल सघन वादलो के समीप शोभायमान होता है।

सिंहासने मणि मयूख शिखा विचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकाव दातम्।
बिम्बं वियद् विलस दंशुलता वितानं
तुङ्गे दयाद्रि शिर सीव सहस्र रश्मेः ॥29 ॥

अन्वयार्थ

मणि मयूख शिखा विचित्रे=मणि किरणो के अग्र भाग से विविध रंग वाले, **सिंहासने**=सिंहासन पर, **कनकावदातं**=स्वर्ण जैसा सुन्दर, **तव वपु**.=तुम्हारा शरीर, **तुंग. उदयाद्रि**=उन्नत उदयाचल के, **शिरसि**=शिखर पर, **वियद्**

विलसद्=आकाश मे शोभित, अंशुलता=किरण रूप लता, वितानं=समूह वाले, सहस्र रश्मे. बिम्बं इव=सूर्य के बिम्ब के समान, विभ्राजते=शोभा प्राप्त है।

भावार्थ

हे जगत शिरोमणि। जिस प्रकार ऊँचे उदयाचल पर्वत के शिखर पर आकाश मे लता के समान दूर तक प्रसरित प्रकाशमान किरणो वाला सूर्य शोभित होता है, उसी प्रकार बहुमूल्य मणिरत्नो की किरण प्रभा से विविध अद्भुत रगो वाले ऊँचे सिंहासन पर आपका स्वर्ण सदृश देदीप्यमान विशुद्ध शरीर शोभित हो रहा है।

कुन्दावदात चल चामर चारु शोभं
विभ्राजते तव वपु. कलधौत कान्तम्।
उद्यच्छ-शांक शुचि निर्झर वारि धार-
मुच्चैस् तटं सुरगिरे-रिव शात-कौम्भम्॥30॥

अन्वयार्थ

कुन्दावदात=कुन्द पुष्प सदृश स्वच्छ श्वेत, चल चामर=चचल चवरो से, चारु शोभं=शोभा सुन्दर है, कल धौत=सोने के समान, कान्तं तव वपुः=कमनीय आपका शरीर, उद्यच्छशांक=उदयमान चन्द्रमा के समान शुभ्र, शुचि निर्झर=शुभ्र झरना, वारिधारं=जल-धार वाला बहता है, शात कौम्भं=स्वर्णमय, सुरगिरेः=सुमेरु पर्वत के, उच्चै· तट इव=उच्च तटो की तरह, विभ्राजते=सुशोभित हो रहा है।

भावार्थ

हे पावन पुरुषोत्तम! जैसे उदीयमान चन्द्रमा के समान पवित्र पावन झरनो की जलधाराओ से सुवर्णमय सुमेरु का ऊँचा शिखर शोभित होता है, उसी प्रकार देवो द्वारा दोनो ओर ढुराए जाने वाले श्वेत शुभ्र चवरो की मनोहर शोभा श्रीसम्पन्न आपका सुवर्ण काति वाला वदन अत्यधिक सुशोभित हो रहा है।

छत्र त्रयं तव विभाति शशांक कान्त-
मुच्चै स्थितं स्थगित भानुकर प्रतापम्।
मुक्ता फल प्रकर जाल विवृद्ध शोभं
प्रख्या पयत् त्रिजगत परमेश्वर-त्वम्॥31॥

अन्वयार्थ

शशांक कान्तं=चन्द्रकाति वाले, उच्चै स्थितं=ऊपर स्थित, स्थगित भानुकर प्रतापं=रोक दिया है सूर्य के प्रचण्ड ताप को, मुक्ता फल=मोतियो के, प्रकर

दिव्य ध्वनिर् भवति ते विशदार्थ सर्व-
भाषा स्वभाव परिणाम गुणैः प्रयोज्य. ॥35 ॥

अन्वयार्थ

स्वर्गापवर्ग=स्वर्ग और निर्वाण के, **गम मार्ग**=जाने के मार्ग, **विर्मागणेष्टः**=बताने मे सहायक, **सद्धर्म तत्त्व कथनैक पटुः**=सुधर्म तत्त्व के कथन करने मे प्रवीण, **त्रिलोक्या.**=तीन लोक को, **विशदार्थ**=विस्तृत अर्थ, **सर्वभाषा**=सब भाषाओ मे, **स्वभाव परिणाम गुणैः प्रयोज्य.**=स्वभाविक परिवर्तित होने वाले गुण से युक्त, **ते दिव्य ध्वनिः**=आपकी दिव्य वाणी, **भवति**=होती है ।

भावार्थ

हे शिव पथ प्रणेता ! आपकी अलौकिक दिव्य देशना स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग दिखाने मे परम प्रिय मित्र के समान है, तीन लोक के प्राणियो को सत्य धर्म और सद वस्तु का स्वरूप कहने समझाने मे समर्थ है । विस्तृत अर्थ बोध देने वाली है तथा सम्पूर्ण ससार की समस्त भाषाओ मे परिवर्तत होने के महान् विलक्षण गुण से समृद्ध है ।

उन्निद्र हेम नव पंकज पुंज कांती
पर्युल्ल सन् नख मयूख शिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धतः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥36 ॥

अन्वयार्थ

जिनेन्द्र=हे जिनेश्वर देव !, **उन्निद्र**=खिले हुए, **हेम नव**=स्वर्ण के नवीन, **पंकज पुंज कांती**=कमल के समूह के समान काति वाले, **पर्युल्लसन**=सर्व ओर तरगित, **नख मयूख**=नखो की किरणो के, **शिखाभिरामौ**=अग्रभाग से सुन्दर, **तव पादौ**=आपके चरण, **यत्र पदानि धत.**=जहॉ कदम रखे जाते हैं, **तत्र विबुधा.**=वहॉ देव गण, **पद्मानि परिकल्पयन्ति**=कमलो को रचते जाते है ।

भावार्थ

हे जिनेन्द्र प्रभो ! आपके समवशरण मे खिले हुए नूतन स्वर्ण कमलो की काति वाले तथा सब ओर फैलने वाली नखो की किरण प्रभा से अतीव मनोहर लगने वाले आपके पावन चरण जहॉ जहॉ रखे जाते है, वहॉ वहॉ भक्त देवगण पहले से स्वर्ण कमलो की रचना कर देते है ।

इत्थं यथा तव विभूतिर् भूज्जिनेन्द्र!
धर्मोपदेशन विधौ न तथा परस्य।
यादृक प्रभा दिनकृत प्रहतान्धकारा
तादृक कुतो ग्रह गणस्य विकाशिनोऽपि ॥37 ॥

अन्वयार्थ

जिनेन्द्र=हे जिनेश्वर देव!, इत्थं=इस प्रकार, धर्मोपदेशन विधौ=धर्मोपदेश के विधान मे, यथा तव=जैसा आपका, विभूति=वैभव, अभूत्=था, तथा परस्य न=वैसा दूसरो का नही, दिनकृत प्रभा=सूर्य की ज्योति, यादृक=जितनी, प्रहतान्धकारा=अधकार का नाश करने वाली है, तादृक=उतनी प्रभा, विकाशिन =चमकते हुए, अपि=भी, ग्रहगणस्य कुत =तारागणो मे कहा से?

भावार्थ

हे देवाधिदेव जिनवर! धर्म देशना करते समय समवशरण मे अष्ट महा प्रतिहार्य रूप विभूति जैसी आपकी थी, वैसी विभूति अन्य देवो को प्राप्त नही हुई, हे प्रज्ञा पुज! अधकार को नष्ट करने वाली प्रभा जो सूर्य की है वह चमकते नक्षत्र एव तारा गणो मे कहा सम्भव है?

श्च्योतन् मदा विल विलोल कपोल मूलं
मत्त भ्रमद् भ्रमर नाद विवृद्ध कोपम्।
ऐरा वताभ-मिभ-मुद्धत माप तन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदा-श्रितानाम् ॥38 ॥

अन्वयार्थ

श्च्योतन्=झरते हुए, मदाविल=मद जल से मलिन, विलोल=चचल, कपोल मूल=गालो के मूल भाग गण्ड स्थल पर, मत्त भ्रमद् भ्रमर नाद=उन्मत्त मडराते हुए भवरो के गुजार से, विवृद्ध कोपं=क्रोध बढ रहा है, ऐरावताभं=ऐरावत हाथी की तरह, आपतन्तम्=सामने आते हुए, उद्धतं=उदण्ड, इभं दृष्ट्वा=हाथी को देखकर, भवदाश्रितानां भयं=आपके आश्रितो को भय, नो भवति=नही होता है।

भावार्थ

हे शरणागत प्रतिपाल! युवावस्था मे प्रवाहित मद से मलिन, चचल गण्ड स्थल पर मण्डराते मदोन्मत्त भौरो की गुंजार से अत्यन्त क्रुद्ध हुआ ऐरावत हाथी

सदृश विशालकाय हाथी भी आक्रमण करे तो भी आपके चरण शरण मे रहने वाले श्रद्धालुभक्त सर्वथा निर्भय बने रहते है।

भिन्नेभ कुम्भ गल-दुज्जवल शोणि-ताक्त
मुक्ता फल प्रकर भूषित भूमि भाग.।
बद्ध क्रमः क्रम गतं हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रम युगा चल संश्रितं ते ।।39 ।।

अन्वयार्थ

भिन्नेभ=विदारण, फाडे हुए हाथी के, **कुम्भ गलद्**=गण्ड स्थल, मस्तक से टपकते हुए, **उज्जवल शोणि ताक्त**=उज्ज्वल, रक्त से लिपटे हुए, **मुक्ताफल प्रकर**=मोतियो के समूह से, **भूषित भूमि भाग.**=भू प्रदेश को विभूषित किया, **बद्धक्रमः**=छलांग मारने उद्यत, **हरिणाधिपः अपि**=सिंह भी, **क्रमगतं**=पजो के बीच पडा हुआ, **क्रम युगाचल**=चरण युगल रूप पर्वत के, **संश्रितं**=आश्रित पर, **न आक्रामति**=आक्रमण नही करता है।

भावार्थ

हे अपराजेय पुरुष ! जिसने विशालकाय हाथियो के मस्तक को विदीर्ण कर रक्तरजित उज्ज्वल मोतियो के ढेर से भू प्रदेश को अलकृत किया हो, जो चौकडी बॉध कर आक्रमण करने तैयार हो, ऐसा भयकर सिंह भी आपके अचल चरणो की शरण लेने वाले भक्त पर आक्रमण नही कर सकता, चाहे वह आपका भक्त सिह के पैरा के सन्निकट आ गया हो।

कल्पान्त काल पवनो-द्धत वह्नि कल्पं
दावानलं ज्वलित-मुज्जवल-मुत्स्-फुलिंगम्।
विश्वं जिघत्-सुमिव-सम्मुख-माप्तन्तं
त्वन् नाम कीर्तन जलं शमयत्य शेषम्।।40 ।।

अन्वयार्थ

कल्पान्त काल पवन उद्धत=प्रलय काल के पवन से उत्तेजित, **वह्नि कल्पं**=अग्नि के सदृश, **ज्वलितं उज्ज्वलं**=प्रज्वलित विशुद्ध, **उत्स्फुलिंग**=ऊपर को उडती हुई चिनगारियॉ, **विश्वं जिघत्सुं इव**=संसार को निगलना, नाश करना चाहती हो मानो, **सम्मुखं आपतन्तं**=सामने को आती हुई, **दावानलं**=वन की आग को, **त्वन्नाम**=तुम्हारे नाम, **कीर्तन जलं**=स्मरण रूपी जल, **अशेषं**=पूर्णत., **शमयति**=शात कर देता है।

भावार्थ

हे अद्वितीय महामेघ। प्रलय काल के महावायु से क्षुब्ध प्रचण्ड विशुद्ध प्रज्वलित अग्नि आकाश मे चिनगारियाँ-तिलगे फेकती हुई ससार को भस्म करने की कामना से द्रुत गति से दावानल का रूप लेकर बढती है, वैसी प्रचण्ड दावानल रूप अग्नि भी आपके नाम रूपी जलधारा के प्रभाव से शीघ्र ही पूर्णतया शात हो जाती है।

रक्ते क्षणं समद कोकिल कण्ठ नीलं
क्रोधोद्धतं फणिन मुत्फण-माप्तन्तम्।
आक्रामति क्रम युगेन निरस्त शङ्कस्
त्वन्नाम नाग दमनी हृदि यस्य पुंस ॥41॥

अन्वयार्थ

यस्य पुंसः हृदि=जिस पुरुष के हृदय मे, **त्वन्नाम नाग दमनी**=आपके नाम रूपी नाग दमनी जडी है, **निरस्त शंक** =शका रहित हुआ, **रक्तेक्षणं**=लाल नेत्रो वाले, **समद कोकिल**=उन्मत्त कोयल के, **कण्ठ नीलं**=कण्ठ की तरह काले, **क्रोधोद्धतं**=क्रोध से फुफकारते हुए, **आपतन्तं**=सामने आते, **उत्फण**=फण उठाए, **फणिनं**=साँप को, **क्रम युगेन**=दोनो पैरो से, **आक्रामति**=लाघ जाता है।

भावार्थ

हे अप्रतिम क्षेमकर। जिसके अन्त करण मे आपके नाम की नाग दमनी जडी विद्यमान है वह श्रद्धानिष्ठ भक्त पुरुष लाल ऑखो, मत्तवाले कोयल कण्ठ सदृश काले, क्रोधावेश मे फुफकारते, फण उठाए सामने आ रहे भयकर जहरीले सर्प को भी अपने पैरो से नि शक होकर लाघ सकता है।

वल्ग-त्तुरंग गज गर्जित भीम नाद-
माजौ बलं वलवता मपि भूपती नाम्।
उद्यद् दिवाकर मयूख शिखा पविद्धं
त्वत् कीर्ततनात्तम इवाशुभिदा-मुपैति ॥42॥

अन्वयार्थ

आजौ=युद्ध मे, **त्वत् कीर्त्तनात्**=आपके कीर्तन से, **वल्ग त्तुरंग**=उछलते हुए घोडो, **गज गर्जित**=हाथियो की गर्जना से, **भीमनादं**=भयकर आवाज वाले, **वलवतां भूपतीनां अपि**=बलशाली तेजस्वी सम्राटो की भी, **वल**=सेना को, **उद्यद दिवाकर**=उगते हुए सूर्य की, **मयूख शिखा**=किरणो के अग्रभाग मे

पविद्धं=छिन्न-भिन्न हुए, तमः इव आशु=अँधेरे की तरह शीघ्र, भिदां उपैति=विनष्ट हो जाती है।

भावार्थ

हे निर्बल बलिन्! रणक्षेत्र मे शक्तिशाली युद्ध निष्णात तेजस्वी राजाओ की सेना मे घोडे हिनहिनाते हो और गर्जना करते हाथियो की भयानक आवाज हो रही हो, अति भीषण कोलाहल मच रहा हो, वह सर्व आपके नाम से सहसा उसी प्रकार परास्त हो जाता है जिस प्रकार प्रभात कालीन उदय होने वाले सूर्य किरणो से रात्रि का घोर अधकार छिन्न-भिन्न हो जाता है।

कुंताग्र भिन्न गज शोणित वारि वाह
वेगावतार तरणातुर-योध भीमे।
युद्धे जयं विजितं दर्जय जेय पक्षास्
त्वत् पाद-पंकज वनाश्रयिणो लभन्ते ॥43 ॥

अन्वयार्थ

कुन्ताग्र=बरछी, भालो के नोक से, **भिन्न**=छिन्न-भिन्न, **गज शोणित**=हाथियो के रक्तरूपी, **वारिवाह**=जल प्रवाह मे, **वेगावतार**=वेग से उतरने, **तरणात्तुर**=तैरने के लिए आतुर-व्यग्र, **योध भीमे**=योद्धाओ के कारण भयानक, **युद्धे**=युद्ध मे, **विजित दुर्जय**=कठिनता से जीते जाने वाले, **जेय पक्षाः**=शत्रु पक्ष को जीतकर, **जयं**=विजय, **लभन्ते**=प्राप्त करते है, **त्वत् पाद पंकज**=आपके चरण कमल, **वनाश्रयिणः**=वन का सहारा लेने वाले।

भावार्थ

हे दुर्जय विजयिन्! भालो के नोक से आहत हाथियो के वेगवान रक्त प्रवाह को तैरने मे भी जो व्याकुलता अनुभव करते हो, असमर्थता महसूस करते हो, वे असमर्थ योद्धा आपके चरण कमल वन का आश्रय लेकर युद्ध निष्णात दुर्जय पक्ष के वीर योद्धाओ को जीत कर विजय श्री वर लेते है।

अम्भो निधौ क्षुभित भीषण नक्र चक्र
पाठीन पीठ भय दोल्वण वाडवाग्नौ
रङ्गत्तरङ्ग शिखर स्थित यान पात्रास्
त्रासं विहाय भवत. स्मरणाद् व्रजन्ति ॥44 ॥

अन्वयार्थ

क्षुभित भीषण=क्षुब्ध हुए भयकर, **नक्र चक्र**=मगरमच्छो के समूह, **पाठीन पीठ**=भीमकाय मछलियो के पीठ से, **भयद् उल्वण वाडवाग्नौ**=भयकर साक्षात वडवानल मय, **अम्भोनिधौ**=समुद्र मे, **रङ्गत्तरङ्ग**=लहराती हुई लहरो के, **शिखर स्थित**=शिखर पर डगमगा रहे, **यान पात्रा** =जहाज है, **भवत स्मरणात्**=आपके स्मरण से, **त्रासं विहाय**=घबराहट को छोडकर, **व्रजंति**=चले जाते है।

भावार्थ

हे नैया खेवन हार! जिस सागर मे भयानक मगरमच्छ, विशालकाय मछलियॉ उछल रही है, बडवानल से जिसका पानी उबल रहा है। ऐसे भयानक लहराती तरगो के नोक पर जिनकी नैया डगमगा रही है। डूबने नष्ट होने का आसार दिखता है। ऐसी घोर विकट अवस्था मे भी घबराहट को छोडकर आपका स्मरण करता हुआ भक्त सकुशल सागर को पार कर लेता है।

उद्भूत भीषण जलोदर भार भुग्ना.
शोच्यां दशा-मुपगताश् च्युत जीविताशा.।
त्वत् पाद पंकज रजोऽमृत दिग्ध देहा.
मर्त्या भवन्ति मकर ध्वज तुल्य रूपा. ॥45॥

अन्वयार्थ

उद्भूत भीषण=उत्पन्न हुए भयानक, **जलोदर भार भुग्ना**=जलोदर के भार से झुके हुए, **शोच्या दशां**=शोचनीय अवस्था को, **उपगता** =प्राप्त, **च्युत जीवित आशा** =छोड दी जीने की आशा, **त्वत् पाद पंकज**=आपके चरण कमलो की, **रज. अमृत**=रज रूपी अमृत से, **दिग्ध देहा** =लिप्त कर शरीर को, **मर्त्या**=मनुष्य, **मकर ध्वज**=कामदेव के, **तुल्य रूपा** =सदृश सुन्दर रूपवान, **भवन्ति**=होते है।

भावार्थ

हे प्राण सुधा! जो भयकर जलोदर के रोग से अत्यन्त दु.खी है, अपने जीवन की आशा जिसने छोड दी है। ऐसी अत्यन्त दयनीय अवस्था को प्राप्त पुरुष भी यदि आपके चरणो की रज अपने शरीर पर लगाते है तो वे एकदम स्वस्थ-निरोग हो जाते है और कामदव के समान सुरूपवान लगने लगते है।

आपाद कण्ठ-मुरु शृखल वेष्टिताङ्गा
गाढ बृहन्-निगड कोटि निघृष्ट जंघा।
त्वन् नाम मंत्र मनिशं मनुजा स्मरन्त
सद्य स्वयं विगत बन्ध भया भवन्ति ॥46॥

अन्वयार्थ

आपाद कण्ठं=पॉव से लेकर कठ तक, उरु श्रृंखल वेष्टिताङ्गा=बडी-बडी साकलो से जकड़े हुए अग वाले, गाढं=अत्यन्त कस कर मजबूत बॉध, बृहन् निगड कोटि=बडी-बडी बेडियो के किनारो से, निघृष्ट जंघा.=रगड खा छिल गई जघाएँ, मनुजा.=मनुष्य, त्वन् नाम मंत्र अनिशं=आपके नाम रूपी मत्र को निरन्तर, स्मरन्तः=स्मरण करते हुए, सद्य=शीघ्र, स्वयं=अपने आप, विगत बन्धभया.=वधन के भय से रहित, भवन्ति=होते है।

भावार्थ

हे वधन मोचक! जो पैर से लेकर कण्ठ तक साकलो के बधन से बधे है शृखलाओ के तीक्ष्ण कोरो की रगड मजबूत बधन से जिनकी जंघाएँ छिल गई है। इस प्रकार से कारागृह मे आजन्म कैद भोगने वाले पुरुष भी आपके नाम का स्मरण अविराम करे तो वंधनो से अपने आप मुक्त हो जाते है।

मत्त द्विपेन्द्र मृगराज दवानलाहि
संग्राम वारिधि महोदर बन्धनोत्थम्।
तस्याशु नाश-मुपयाति भयं भियेव
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥47 ॥

अन्वयार्थ

य.=जो, मतिमान तावकं=प्रज्ञावान आपके, इमं स्तवं=इस स्तोत्र को, अधीते=पढता है, तस्य=उसका, मत्तद विपेन्द्र=वह मदोन्मत्त हस्ती, मृगराज=सिंह, दवानल=दावाग्नि, अहि=सर्प, संग्राम=युद्ध, वारिधि=समुद्र, महोदर=जलोदर, वन्धनोत्थम्=बधन से उत्पन्न, भयं भिया=भय भयभीत होकर, इव आशु नाशं=मानो शीघ्र ही विनाश को, उपयाति=प्राप्त होता है।

भावार्थ

हे अभय मूर्ति! जो वुद्धिमान पुरुष आपके इस स्तोत्र को श्रद्धा भक्ति भाव से पढता है उसका मदोन्मत्त हाथी, सिंह, वडवानल, सर्प, युद्ध, सागर, जलोदर, वेडी वधन अर्थात् कारागृह सम्बन्धी उत्पन्न भय स्वयं ही भयभीत होकर दूर हट जाता है।

स्तोत्र स्त्रजं तव जिनेन्द्र! गुणै-र्निवद्धां
भक्त्या मया रुचिर वर्ण विचित्र पुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठ गता-मजस्त्रं
तं मान्तुङ्ग-मवशा समुपैति लक्ष्मी. ॥48 ॥

अन्वयार्थ

जिनेन्द्र=हे जिनेन्द्र भगवन्!, **इह**=इस लोक मे, **य जन**=जो मनुष्य, **भक्त्या**=भक्ति से, **मया**=मेरे द्वारा, **गुणै**=प्रसाद माधुर्य ओज आदि गुणो से, **निबद्धां**=बनाई गई, **रुचिर वर्ण**=स्वर और व्यञ्जनादि वर्णों के, सुन्दर, विचित्र **पुष्पां**=विविध फूलो की, **स्तोत्र स्रज**=स्तोत्र रूपी माला को, **अजस्रं**=निरन्तर, **कण्ठगतां धत्ते**=गले मे धारण करता है, **तं मान्तुंगं**=उन मान्तुगाचार्य को, **अवशा**=विवश होकर, **लक्ष्मी· समुपैति**=लक्ष्मी प्राप्त होती है।

भावार्थ

हे जिनेन्द्र प्रभो! मैने भक्ति भाव से यह आप की स्तोत्र रूपी माला तैयार की है, जो मनोहर वर्ण रूपी नानाविध फूलो से युक्त है। जो भी आपके श्रेष्ठगुणो से निष्पन्न माला को सतत कण्ठाग्र मे धारण करता है, उसको मान्तुगाचार्य की तरह विवश होकर लक्ष्मी स्वयमेव प्राप्त होती है।

□

कल्याण मंदिर स्तोत्र

कल्याण मंदिर-मुदार-मवद्य-भेदि
भीता भयप्रद-मनिन्दित-मङ्घ्रि पदमम्।
संसार सागर निमज्ज दशेष जन्तु
पोतायमान-मभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥1 ॥

अन्वयार्थ

कल्याण मंदिरं=कल्याण के मदिर, **उदारं**=उदार, **अवद्य भेदि**=पापो को भेदने वाले, **भीताभय**=डरे हुए को अभय, **प्रदं**=देने वाले, **अनिन्दित**=अतिश्रेष्ठ, **संसार सागर निमज्ज**=भव सागर मे डूबे हुए, **अशेष जन्तु**=सर्व प्राणियो के लिए, **पोतायमानं**=जहाज की तरह आधारभूत, **जिनेश्वरस्य**=जिनेश्वर देव के, **अंघ्रि पदं**=चरण कमलो को, **अभिनम्य**=नमस्कार करके।

भावार्थ

— — — — — — — — —

यस्य स्वयं सुर गुरुर् गरिमाम्वु राशे.
स्तोत्रं सुविस्तृत मतिर्न विभु-र्विधातुम्।
तीर्थेश्वरस्य कमठ-स्मय धूमकेतोस्
तस्याह-मेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥2 ॥

अन्वयार्थ

यस्य गरिमा=जिसकी महिमा, **अम्बुराशे.**=सागर सम है, **स्तोत्रं विधातुं**=स्तुति करने के लिए, **सुविस्तृत मति**=विशाल बुद्धि वाला, **स्वयं सुर गुरु**=स्वय बृहस्पति, **विभु: न**=समर्थ नही है, **कमठ: मय**=कमठ के अहकार को चूरने, **धूमकेतो**=धूमकेतु के समान, **तस्य तीर्थेश्वरस्य**=उस तीर्थनाथ की, **किल**=आश्चर्य है, **एष. अहं**=यह मै, **संस्तवनं करिष्ये**=स्तवन करूँगा।

भावार्थ

तिरने के प्रमुख केन्द्र, अत्यन्त उदार, पाप कर्मो को नष्ट करने वाले, दुखो से डरे हुए को अभय देने, अतिश्रेष्ठ, ससार सागर में गिरते हुए प्राणियो के लिए जहाज सदृश आधारभूत है, उन जिनेश्वर देव के चरण कमलो को नमस्कार करके।

जो कमठ के अहकार को नष्ट करने धूमकेतु वनकर आए, गौरव-गरिमा के अथाह सागर थे, जिनकी स्तुति करने के लिए अतिशय बुद्धिमान देवता का गुरु बृहस्पति स्वय भी समर्थ नही है, आश्चर्य है उन तीर्थेश प्रभु की मै स्तुति करूँगा।

सामान्य तोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप
मस्मादृशा कथमधीश! भवन्त्यधीशा·।
धृष्टोऽपि कौशिक शिशुर यदि वा दिवान्धो
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्म रश्मे ? ॥3॥

अन्वयार्थ

अधीश=हे स्वामिन्!, सामान्यत: अपि=साधारण रूप से भी, तव स्वरूप वर्णयितुं=आपके स्वरूप का कथन करने के लिए, अस्मादृशा.=मुझ जैसे, कथं अधीशा:=कैसे समर्थ, भवन्ति=हो सकते है, यदि वा=अथवा जैसे, दिवान्ध =दिन मे अधा, कौशिक शिशु.=उल्लू का बच्चा, धृष्ट अपि=धीठ होकर भी, किं घर्म रश्मे:=क्या सूर्य के, रूपं प्ररूपयति किल=रूप का वर्णन कर सकता है? नही।

भावार्थ

हे स्वामीनाथ! आपके असीम महिमा वाले स्वरूप का साधारण वर्णन करने के लिए हम सरीखे मन्द बुद्धि वाले कैसे समर्थ हो सकते है? जैसे दिन मे नही देखने वाला उल्लू का बच्चा ढीठ क्यो न हो वह प्रचण्ड किरणो वाले जगमगाते सूर्य बिम्ब का वर्णन यत्किचित भी कर सकता है? कदापि नही। अत आपके अनन्त ज्योतिर्मय स्वरूप का निरूपण मै नही कर सकता।

मोह क्षयाद नुभवन् नपि नाथ! मर्त्यो
नूनं गुणान् गणयितुं न तव क्षमेत।
कल्पान्त वान्त पयस. प्रकटोऽपि यस्मान्
मीयेत केन् जलधेर् ननु रत्न राशि ॥4॥

अन्वयार्थ

नाथ=हे नाथ!, मर्त्य.=मनुष्य, मोह क्षयात्=मोह कर्म के क्षय होने मे, अनुभवन्=अनुभव करता हुआ, तव गुणान्=आपके गुणो को, गणयितुं=गिनने के लिए, नूनं न क्षमेत=निश्चय ही समर्थ नही है, यस्मान्=क्योकि, कल्पान्त वान्त पयस=प्रलय के समय जल वाहर निकल गये, जलधे=समुद्र की, प्रकटोऽपि रत्न राशि=स्पष्ट दिखने वाली रत्न राशि भी, ननु=निश्चित, केन मीयेत=किससे गिनी जा सकती है?

भावार्थ

हे प्रभो ! मोहनीय कर्म को क्षय करने वाला महापुरुष केवल ज्ञान दशा से आपके गुणो को निश्चय ही जान लेता है किन्तु पूर्णरूपेण वह कथन नही कर सकता। प्रलय काल मे पानी का अभाव होने पर सामुद्रिक रत्न राशि स्पष्ट रूप से दिखायी देती है फिर भी कोई उनकी गणना कर सकता है ? नही।

अभयु-द्यतोऽस्मि तव नाथ! जडाशयोऽपि
कर्तु स्तवं लसद-संख्य गुणा करस्य।
बालोऽपि किं न निज बाहु युगं वितत्य
विस्तीर्ण तां कथयति स्व-धियाम्बु राशे. ? ॥5 ॥

अन्वयार्थ

नाथ=हे स्वामिन !, **बाल:अपि**=बालक भी, **स्वधिया**=अपनी बुद्धि के अनुरूप, **निज बाहु युगं**=अपनी भुजाओ को, **वितत्य**=फैलाकर, **अम्बुराशे: विस्तीर्णतां**=सागर के विस्तार को, **कथयति किं न**=क्या नही कहता है, **जडाशय. अपि**=महामूर्ख जड़ बुद्धि होने पर भी, **असंख्य गुणाकरस्य**=अपिरमित गुणो की, **लसद्**=शोभा वाले, **तव स्तवं**=आपके स्तवन को, **कर्तु**=करने के लिए, **अभ्युद्यत: अस्मि**=तैयार हुआ हूँ।

भावार्थ

हे भगवन् ! मैं महामूर्ख जड बुद्धि होकर भी अपूर्व अपरिमित गुणो के आकार आपकी अमर्यादित महिमा वाले स्तवन को करने के लिए तैयार हुआ हूॅ। जैसे शक्तिहीन अबोध बालक सहज भाव से अपनी छोटी-छोटी दोनो भुजाएँ फैलाकर विशाल सागर के विस्तार को बतलाने की कोशिश करता है।

ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश!
वक्तुं कथं भवति तेषु ममाव-काश. ?
जाता तदेव-मस-मीक्षित कारि-तेयं
जल्पन्ति वा निज गिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥6 ॥

अन्वयार्थ

ईश:=हे प्रभो !, **ये तव गुणा**·=जो आपके गुण, **योगिनां अपि**=योगी महात्माओ द्वारा भी, **वक्तुं**=कहने के लिए, **न यान्ति**=नही आ सकते ?, **तेषु मम कथं**=उनमे मेरी कैसे, **अवकाश भवति**=शक्ति हो सकती है, **तत् एवं**=इसलिए इस प्रकार, **इयं**=यह, **असमीक्षित**=विना सोचे विचारे,

कारिता=करता हुआ, **वा ननु**=अथवा निश्चय ही, **निज गिरा**=अपनी वाणी से, **पक्षिणा अपि**=पक्षी गण भी, **जल्पन्ति**=बोलते है।

भावार्थ

हे गुण गणालकृत प्रभो! आपके जिन अपरिमित गुणो का यथार्थ वर्णन करने मे प्रसिद्ध योगी और धुरन्धर विद्वान भी समर्थ नही हो सकते है तव उन गुणो का वर्णन मेरे जैसा अल्पज्ञ साधक कैसे कर सकता है? स्तुति शुरू करने से पहले शक्ति सामर्थ्य का विचार नही किया वस्तुत यह कार्य बिना विचारे हुआ फिर भी मानवीय वाणी मे बोलने मे असमर्थ पशु पक्षी अपनी बोली मे ही बोलते है, उसी प्रकार मै अपनी अस्पष्ट भाषा मे स्तुति करूँगा।

आस्ता मचिन्त्य महिमा जिन! संस्तवस्ते
नामाऽपि पाति भवतो-भवतो जगन्ति।
तीव्रा तपोपहत पांथ जनान् निदाधे
प्रीणाति पद्म सरस· सरसोऽनिलोऽपि ॥7 ॥

अन्वयार्थ

जिन=हे जिनेन्द्र!, **अचिन्त्य महिमा**=चिन्तन मे न आए ऐसी अपूर्व महिमा वाले, **ते संस्तव**=आपकी स्तुति, **आस्तां**=दूर रहे, **भवत· नाम अपि**=आपका नाम भी, **भवत**=ससार सागर से, **जगन्ति**=लोगो को, **पांत**=वचा लेता है, **निदाघे**=ग्रीष्मकाल मे, **तीव्र**=तेज, **आतप उपहत**=धूप से सताए, **पान्थ जनान्**=पथिक जनो को, **पद्म सरस**=कमल सरोवर का, **सरस**=सरस शीतल, **अनिल अपि**=पवन भी, **प्रीणाति**=सतुष्ट कर देता है।

भावार्थ

हे सातिशय जिनेन्द्र। जैसे ग्रीष्मकालीन असह्य प्रचण्ड धूप से व्याकुल वने राहगीरो को आनन्द देने वाले कमल सरोवर का तो कहना ही क्या? उसकी ठण्डी हवा ही उन्हे सुखकर प्रतीत होती है, वैसे ही हे प्रभो! आपका अचिन्त्य महिमा वाले स्तवन का कहना ही क्या? वह तो दूर आपका नाम ही त्रिभुवन के प्राणियो को ससार के दारुण दुखो से वचा लेता है।

हद् वर्तिनि त्वचि विभो! शिथिली भवन्ति
जन्तो क्षणेन निविडा अपि कर्म वन्धा।
सद्यो भुजंग-ममया इव मध्य भाग
मभ्यागते वन शिखण्डिनि चन्दनस्य ॥8 ॥

अन्वयार्थ

विभो=हे प्रभो !, **त्वयि**=आप, **जन्तो**=प्राणियो के, **हृद् वर्तिनि**=हृदय मे आते है तो, **निविडा**=सघन, **कर्म बन्धा**.=कर्मो के बधन, **अपि क्षणेन**=भी क्षण भर मे, **शिथिली भवन्ति**=ढीले पड जाते है, **वन शिखण्डिनि**=वन मयूर के, **अभ्यागते**=आने पर, **चन्दनस्य**=चन्दन वृक्ष के, **मध्य भागं**=मध्य भाग को लिपटे, **भुजगं**=सर्पो की, **अमया**=कुडलियो की, **इव**=तरह, **सद्य**.=शीघ्र, **शिथिलि भवन्ति**=ढीले हो जाते है।

भावार्थ

हे कर्म विमुक्त जिनेश ! वन मूयर के आते ही मलयागिरि चन्दन वृक्षो से लिपटे भयंकर भुजगो की दृढ कुण्डलियाँ तत्क्षण ढीली पड जाती है वैसे ही ध्यान शील भक्तो के मन मंदिर के उच्च सिंहासन पर आपके विराजमान होते ही ज्ञानावरणीयादि कर्मो के प्रगाढ बन्धन तत्क्षण अनायास शिथिल हो जाते है।

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र !
रौद्रै-रूपद्रव शतैस् त्वयि वीक्षितेऽपि।
गो स्वामिनि स्फुरित तेजसि दृष्ट मात्रे
चौरै-रिवाशु पशवः प्रपलाय-मानैः ॥9॥

अन्वयार्थ

जिनेन्द्र=हे जिनेन्द्र !, **स्फुरित तेजसि**=वलशाली तेजस्वी, **गो-स्वामिनि दृष्ट मात्रैः**=गो पालक को देखते ही, **आशु**=शीघ्र, **प्रपलायमानै**.=दौडते हुए, **चौरैः**=चोरो के पंजे से, **पशवः इव**=पशु छूट जाते है उसी तरह, **त्वयि**=आपको, **वीक्षितेऽपि**=देखते ही, **मनुजाः रौद्रैः**=मनुष्य महा भयकर, **उपद्रव शतैः**=सैंकडो उपद्रवों से, **सहसा एव**=शीघ्र ही, **मुच्यन्ते**=मुक्त हो जाते है।

भावार्थ

हे सकटमोचक प्रभो ! गॉव के पशुओ को चोर चुरा कर ले जाते है उन्हे ज्यो ही शक्तिशाली तेजस्वी ग्वाला नजर आता है त्यो ही वे पशुओ को शीघ्र भगाते है, उनके पजे से पशुधन छूट जाता है वैसे ही हे दीनानाथ ! आपकी परम शांत वीतराग मुख मुद्रा का दर्शन करते ही श्रद्धालु भक्त के सैंकडो घोर सकटो का अवसान तत्काल हो जाता है।

त्वं तारको जिन ! कथं भविनां त एव
त्वामुद्-वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्त ।

यद्वा दृतिस्तरति यज्जल-मेष नून-
मन्त गतस्य मरुत स किलानुभाव ॥10 ॥

अन्वयार्थ

जिन=हे जिनेश्वर देव !, त्वं भविनां=आप ससारियो के, तारक कथं=तारक कैसे है, यत् उत्तरन्त =क्योकि पार होते हुए, ते एव=वे ही, हृदयेन त्वां=हृदय से आपको, उद् वहन्ति=तिरा कर ले जाते है, यद्वा=अथवा जो, दृति.=मसक, जलं तरति=जल को तैरती है, स =वह, नुनं एव=निश्चय ही, अन्तर्गतस्य=अन्दर भरी हुई, मरुत.=हवा का, किल=ही, अनुभाव:=प्रभाव है ।

भावार्थ

हे भव पयोधि तारक ! जैसे अपने भीतर भरी हुई पवन के प्रभाव से चर्म मसक पानी पर तैरती किनारे लग जाती है उसकी प्रकार हे जिनेश्वर देव ! भव्य जन ससार सागर से पार उतरते है। उस समय वे अपने हृदय सिंहासन पर आपको विराजमान कर आपके ध्यान चिन्तन मे एकाकार होने वाले ससार सिन्धु को निर्विघ्न पार हो जाते है। इसमे भक्त की शक्ति नही आपकी भक्ति ही प्रमुख है ।

यस्मिन् हर प्रभृतयोऽपि हत प्रभावा·
सोऽपि त्वया रति पति क्षपित क्षणेन।
विध्या पिता हुत भुज. पयसाऽथयेन
पीतं न किं तदपि दुर्धर वाडवेन? ॥11 ॥

अन्वयार्थ

यस्मिन्=जिनके सामने, हर प्रभृतय अपि=हरिहर आदि देव भी, हत प्रभावा =नि स्तेज हो गए, स रति पत्ति. अपि=वह कामदेव भी, त्वया क्षणेन=आपसे क्षण भर मे, क्षपित =नष्ट हो गया, अथ=क्योकि, येन पयसा =जिस जल से, हुतभुज =अग्नि, विध्यापिता=बुझायी जाती है, तत् अपि=वह जल भी, किं दुर्धर=क्या प्रचण्ड, वाडवेन=वडवानल द्वारा, न पीतं=नही पिया गया ।

भावार्थ

हे अनग विजयिन् ! जिस कामदेव के सम्मुख हरिहर आदि देव भी पराजित हो गए, उस त्रिभुवनजयी कामदेव को हे जितेन्द्रिय जिनेन्द्र ! आपने क्षण भर मे नष्ट कर दिया। इसमे आश्चर्य की क्या बात है। जो जल प्रचण्ड अग्नि काण्डो को बुझाकर शान्त कर सकता हैं उसी जल को सागर का प्रचण्ड वडवानल क्या जला नहीं देता है? जला-सोख लेता है।

स्वामिन्-ननल्प गरिमाण मपि प्रपन्नास्
त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः ?
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यति लाघवेन
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभाव. ॥12 ॥

अन्वयार्थ

स्वामिन्=हे नाथ, अहो=आश्चर्य है कि, अनल्प गरिमाणं अपि=अत्यन्त गौरव पाकर भी, त्वां प्रपन्ना=आपको पाकर, हृदये दधानाः=हृदय मे धारण करते, जन्तव.=जीव, जन्म उदधिं=ससार सागर को, अति लाघवेन=वहुत लघुता से, कथं=कैसे, लघु तरन्ति=शीघ्र तिर जाते है, यदि वा=अथवा इस प्रकार, हन्त=आश्चर्य है कि, महतां प्रभाव.=महापुरुषो का प्रभाव, चिन्त्यो न=चिन्तन मे नही, भवति=होता है।

भावार्थ

हे त्रिभुवन तिलक ! अत्यधिक आश्चर्य की बात है कि अनन्तानन्त गुरुता गौरव को प्राप्त है फिर भी आपको हृदय मे धारण कर यह जीव ससार सागर को कैसे अतिशीघ्र तिर जाते है ? इसमे आश्चर्य की क्या वात है महापुरुषो का प्रभाव ही अचिन्त्य होता है। उनका प्रत्येक कार्य चमत्कार मय और रहस्यपूर्ण होता है।

क्रोधस्त्वया यदि विभो! प्रथमं निरस्तो
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्म चौराः ?
प्लोषत्य मुत्र यदि वा शिशिराऽपि लोके
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ? ॥13 ॥

अन्वयार्थ

विभो=हे प्रभो !, यदि त्वया=यदि आपने, क्रोध. प्रथमं=क्रोध को पहले, निरस्त.=विफल कर दिया, तदा वद=तव वतलाइये, कर्म चौराः कथं=कर्म रूपी चोरो को कैसे, ध्वस्त. किल=नष्ट किया, लोके=ससार मे, यदि वा=अथवा, अगर, अमुत्र=इस लोक मे, हिमानी=पाला, शिशिरापि=ठण्डा होने पर भी, किं नील द्रुमाणि=क्या हरे भरे वृक्ष वाले, विपिनानि=जंगलो को, न प्लोषति=नहीं जला देता है ?

भावार्थ

हे कोपदमी ! यदि आपने क्रोध को पहले ही नष्ट कर दिया तव वतलाइए आपने कर्म चोरो को कैसे नष्ट किया ? इस ससार मे बर्फ-तुषार एकदम ठण्डा होने पर भी क्या हरे भरे वृक्षो, वनो, उपवनो को नही जला देता है ? अर्थात् जला देता है, अग्नि की अपेक्षा बर्फ की शक्ति ही महान है।

त्वां योगिनो जिन ! सदा परमात्म रूप-
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुज कोशदेशे।
पूतस्य निर्मल रुचे र्यदि वा किमन्य-
दक्षस्य सम्भवि पदं ननु कर्णिकाया· ॥14 ॥

अन्वयार्थ

जिन=हे वीतराग देव !, **योगिनः**=योगी जन, **सदा परमात्म रूपं**=हमेशा परमात्म रूप मे, **त्वां हृदय अम्बुज**=आपको हृदय कमल के, **कोषदेशेअन्वेषयन्ति**=मध्य भाग मे ढूँढते है, **यदि वा**=अथवा अगर, **पूतस्य निर्मल उचे**=पावन निर्मल काति वाले, **अक्षस्य संभ वि पदं**=कमल वीज का उत्पत्ति स्थल, **ननु कर्णिकाया.**=निश्चय कर्णिका को छोडकर, **अन्यत् किं**=अन्य क्या है ?

भावार्थ

हे तिरण तारण ! आप परमात्म स्वरूप हैं, इसलिए महर्षि जन परमात्म स्वरूप आपको सदैव अपने हृदय कमल के मध्य भाग कर्णिका मे अपने ज्ञान नेत्र द्वारा खोजते है, वह ठीक ही है जैसे पवित्र निर्मल काति वाले कमल के वीज का उत्पत्ति स्थान कमल की कर्णिका ही है वैसे ही ही शुद्धात्म के अन्वेषण का स्थान हृदय कमल का मध्य भाग है।

ध्यानाज्जिनेश ! भवतो भविन. क्षणेन
देहं विहाय परमात्म दशां व्रजन्ति।
तीव्रानला-दुपल-भाव-मपास्य लोके
चामी करत्व-मचिरादिव धातु भेदा ॥15 ॥

अन्वयार्थ

जिनेश=हे जिनेश !, **भविन भवत.**=ससार भविक जीव आपको, **ध्यानात् क्षणेन**=ध्यान से क्षण भर मे, **देहं विहाय**=शरीर को छोडकर, **परमात्म दशां**=परमात्म स्वरूप को, **व्रजन्ति**=पा लेते है, **लोके**=संसार मे, **धातु**

भेदा:=विविध भेद वाली धातुएँ, तीव्रानलाद=तीव्र अग्नि से, उपलभावं=पत्थर के रूप को, अपास्य=छोडकर, चामी करत्वं=स्वर्ण रूप को, अचिराद् इव=शीघ्र ही पा लेती है।

भावार्थ

हे अद्वितीय ज्ञान पुज ! ससार मे जिन धातुओ से सोना बनता है। वे धातुएँ तेज अग्नि के ताप से अपने पाषाण रूप को छोडकर शीघ्र स्वर्ण हो जाती है, उसी प्रकार विशुद्ध चढते परिणामो से आपको अन्तर्हदय मे ध्याते हुए ससार के भव्य जीव शीघ्र नश्वर देह को छोड कर परमात्म स्वरूप को पा जाते है।

अन्त. सदैव जिन! यस्य विभाव्यसे त्वं,
भव्यै: कथ् तदपि नाशयसे शरीरम्?
एतत् स्वरूप मथ मध्य विवर्तिनो हि
यद् विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावा. ॥16॥

अन्वयार्थ

जिन=हे जिनेन्द्र !, भव्यै.=भव्यो के द्वारा, यस्य अन्त.=जिस शरीर के भीतर, त्वं सदैव=आप हमेशा ही, विभाव्यसे=ध्याये जाते है, तत् शरीरं अपि=उस शरीर को भी, कथं नाशयसे=कैसे नष्ट करा देते है, अथ=यदि, एतत् स्वरूपं हि=यह स्वभाव ही है, यत्=कि, मध्य विवर्तिन=मध्य मे रहा हुआ, महानुभावा:=महापुरुष, विग्रहं प्रशमयन्ति=अलगाव को शान्त करते है।

भावार्थ

हे प्रज्ञानिधे ! जिस शरीर के अन्तर्हदय मे श्रद्धालु भव्य भक्त आपका निरन्तर ध्यान करते है। उस शरीर के पृथक् करण का उपदेश आप क्यो देते है? आप रक्षा करने की बजाय विपरीत करते है, सो ठीक ही है जब महापुरुष मध्यस्थ बन जाते हैं तो शरीर और कलह को पूर्णतया समाप्त कर देते हैं। अत. ध्याता का शरीर आपके ध्यान से छूट जाता है और आत्मा मुक्त हो जाता है।

आत्मा मनीषिभि-रयं त्वद भेद बुद्ध्या
ध्यातो जिनेन्द्र! भवतीह भवत् प्रभाव।
पानीय-मप्यमृत-मित्य-नुचिन्त्य मानं,
किं नाम नो विष विकार-मपा करोति? ॥17॥

अन्वयार्थ

जिनेन्द्र=जिनेन्द्र प्रभो, इह=इस लोक मे, मनीषिभि॰=बुद्धिमानो के द्वारा, त्वद्=आपसे, अभेद बुद्धया=अभेद बुद्धि द्वारा, ध्यात =ध्यान किया हुआ, अय आत्मा=यह आत्मा, भवद् प्रभाव =आप जैसा प्रभावशाली, भवति=होता है, अमृतं इति=यह अमृत है, अनुचित्यमानं=चिन्तन रखते हुए, पानीय अपि=ये पानी भी, किं विष विकारं=क्या विष विकार के दुष्प्रभाव को, अपाकरोति=दूर करता, नो=नही, नाम=नाम ।

भावार्थ

हे देवाधिदेव जिनेन्द्र । जैसे पानी को यदि अमृत है ऐसी प्रबल भावना रखते हुए विश्वास के साथ उपयोग मे लिया जाता है तो क्या वह विष वेदना के प्रभाव का नामोनिशान नही मिटा देता है ? अर्थात् मिटा देता है उसी प्रकार इस ससार मे जब अध्यात्म चेतना वाले मनीषी अभेद बुद्धि से अर्थात् वे स्वात्मा को आपके समान चिंतन करने, ध्याने से उनकी साधारण आत्मा भी आपके सदृश प्रभावशाली बन जाती है, परमात्म रूप हो जाती है ।

त्वामेव वीत तमसं पर-वादिनोऽपि
नूनं विभो! हरि हरादि-धिया प्रपन्ना ।
किं काच कामलिभि-रीश! सितोऽपि शंखो
नो गृह्यते विविध वर्ण विपर्ययेण? ॥18॥

अन्वयार्थ

विभो=हे स्वामिन् !, वीत तमसं=अज्ञान अंधकार से रहित, त्वां एव=आपको ही, पर वादिन =इतर मतावलम्बी, अपि=भी, नूनं=निश्चय से, हरि हरादि धिया=ब्रह्मादि की बुद्धि से, प्रपन्ना =पूजते है, ईश=हे ईश, काच कामलिभि =काच कामला होने से, किं सित =क्या सफेद, शंख अपि=शख भी, विविध वर्ण विपर्ययेण=अनेक विपरीत वर्णो से, नो गृह्यते=ग्रहण नही किया जाता है ?

भावार्थ

हे त्रिलोक शिखामणे । जिस तरह पीलिए रोग से ग्रसित पुरुष श्वेत वर्ण वाले शख को भी पीला नीलादि अनेक रग वाला मानता है । उसी तरह अन्य धर्म-मतपथ वाले पुरुष राग द्वेष आदि अज्ञ अधकार से रहित आपको ही विष्णु महादेव आदि मानकर पूजते है ।

धर्मोपदेश समये सविधानुभावा
दास्तां जनो भवति ते तरुरप्य शोक· ।
अभ्युद्गते दिन पतौ समही-रुहोऽपि
किं वा विबोध मुपयाति न जीव लोकः ? ।।19 ।।

अन्वयार्थ

धर्मोपदेश समये=धर्म देशना के समय मे, ते सविधानुभावात्=आपकी समीपता के प्रभाव से, जनः आस्तां=मनुष्य तो दूर रहे, तरुः अपि=वृक्ष भी, अशोकः भवति=अशोक हो जाता है, वा दिन पतौ=अथवा सूर्य के, अभ्युदगते=उदय होने पर, स महीरुहोऽपि=वृक्षादि के साथ, जीव लोकः=ससार, किं विबोधं=क्या विकास को, न उपयाति=नही प्राप्त होता ?

भावार्थ

हे पुण्य गुणोत्कीर्ते ! प्रातःकाल सूर्योदय होता है, उस समय केवल मानव ही निद्रा त्याग कर जाग्रत नही होता है अपितु कमलादि सर्व जीव ससार के प्रबुद्ध हो जाते है अर्थात् सकोच रूप निद्रा को छोडकर विकसित हो जाते है। उसी प्रकार हे दयानिधे ! आप जिस समय धर्मोपदेश करते है। उस समय आपके सत्संग के प्रभाव से वृक्ष भी अशोक हो जाता है। तव मानव समुदायादि के शोक रहित होने मे आश्चर्य किस बात का है ? महापुरुपो का प्रभाव ही अलौकिक होता है।

चित्रं विभो ! कथम-वाड्मुख-वृन्तमेव
विष्वक पतत्य विरला सुर पुष्प वृष्टि. ।
त्वद् गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश !
गच्छन्ति नून-मध एव हि बन्धनानि ।।20 ।।

अन्वयार्थ

विभो=हे नाथ, चित्रं=आश्चर्य है कि, विष्वक्=चहुँ ओर, अविरला=निरन्तर, सुर पुष्प वृष्टिः=देवताओ से की पुष्प वर्षा, अवाड्मुख वृन्तं=नीचे डण्ठल और ऊपर पॉखुरी, कथं=क्यो, पतति=गिरती है, यदि वा=अथवा ऐसा, मुनीश=हे मुनेश्वर, त्वद्गोचरे=आपके सामने, सुमनसां=श्रेष्ठ मनस्वियो के, बन्धनानि=बन्धनो को, नूनं अध=निश्चय नीचे, एव हि=ऐसे ही, गच्छन्ति=जाते है।

भावार्थ

हे धर्म सघ नायक ! अद्भुत आश्चर्य है कि आपके ऊपर देवताओ द्वारा जो सघन अचित फूलो की वर्षा की जाती है। उन फूलो के डण्ठल नीचे की ओर तथा पॉखुरी ऊपर रहती है। वे ऐसे क्यो गिरते है? वे अधोमुखी डण्ठल इस बात का सूचन करते है कि हे भव्योद्धारक प्रभो ! आपके सामीप्य से श्रद्धाशील भक्तो के कर्म बन्धन अधोमुखी बन जाते है अर्थात् शर्म से मुख नीचाकर चले जाते है, नष्ट हो जाते है। यह 'सुर पुष्प वृष्टि' नामक दूसरा प्रतिहार्य है।

स्थाने गभीर हृदयोदधि सम्भवाया
पीयूषतां तव गिरः समुदीर यन्ति।
पीत्वा यत. परम सम्मद संग भाजो
भव्या व्रजन्ति तरसाऽप्य जरामर त्व ॥21 ॥

अन्वयार्थ

गम्भीर=गम्भीर, **हृदय. उदधि**=हृदय समुद्र से, **सम्भवाया.**=उत्पन्न हुई, **तव गिरः**=आपकी वाणी को, **पीयूषतां**=सुधा के, **सम**=समान, **उदीरयन्ति**=बतलाते है, **यत भव्या**=क्योकि भव्य जन, **तां पीत्वा**=उसको पी करके, **परम**=श्रेष्ठ, **संमद संग भाज**=सम्यक् तया असग हुए, **तरसापि**=अतिशीघ्र, **अजरामर त्वं**=अजर अमर तुम्हारे, **स्थाने**=स्थान को, **व्रजन्ति**=प्राप्त करते है।

भावार्थ

हे त्रिभुवनाधिपते ! आपके गम्भीर हृदय रूपी समुद्र स्थल से समुत्पन्न हुई दिव्य देशना ध्वनि को ससारी जन सुधा सदृश बतलाते है। वह सर्वाशत सत्य है। जैसे अमृत पान कर मनुष्य अमर हो जाते है, वैसे ही भव्य प्राणी आपके वचनामृत का पान कर शीघ्र परमानन्द से सम्पन्न हो सच्चिदानन्द रूप को पा जाते है।

स्वामिन्! सुदूर मवनम्य समुत्पतन्तो
मन्ये वदनति शुचय सुर चामरौघा।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनि पुंगवाय
ते नून मूर्ध्व गतय खलु शुद्ध भावा ॥22 ॥

अन्वयार्थ

स्वामिन्=हे श्री सुशोभित नाथ!, **मन्ये**=मानता हूँ, **शुचय**=पावन, **सुर चामरौघा**=देवो द्वारा ढुलाए जाते श्वेत चवर, **सुदूरं अवनम्य**=अति नीचे को

झुककर ऊपर उठते हुए, वदन्ति=कहते है कि, ये अस्मै=जो इन, मुनि पुंगवाय=श्रेष्ठ मुनीन्द्र को, नति=नमस्कार, विद्धते=करते है, ते नूनं=वे निश्चय ही, शुद्धभावा.=विशुद्ध परिणाम वाले होकर, खलु=निश्चय, ऊर्ध्वगतय.=ऊँची गति पाते है।

भावार्थ

हे धर्म चक्रेश्वर! जब देवगण आप पर चवर ढोरते है तब वे पहले नीचे की ओर झुकते है, बाद मे ऊपर की ओर जाते हुए मानो वे जनता को मौन सदेश देते है कि जो वीतराग जिनेन्द्र सर्वोत्तम महामुनि को झुक-झुक कर नमस्कार करते है। वे अवश्यमेव शुद्ध परिणाम वाले होकर उर्ध्वगति को हमारी तरह पा जाते है।

श्यामं गम्भीर गिर मुज्जवल हेम रत्न
सिंहासनस्थ-मिह भव्य शिखण्डिनस्-त्वाम्।
आलोक-यन्ति रभसेन नदन्त-मुच्चैश्-
चामी कराद्रि शिर सीव नवाम्बु वाहम्॥23॥

अन्वयार्थ

इह=इस लोक मे, श्यामं=श्याम वर्ण वाले, गम्भीर गिरं=गहन वाणी वाले, उज्ज्वल=उज्ज्वल, हेम=स्वर्ण निर्मित, रत्न=रत्नजडित, सिंहासनस्थं=सिंहासन पर विराजे, त्वां=आपको, भव्य शिखण्डिन.=भव्य जन रूप मयूर, चामी कराद्रि शिरसि=सुमेरु शिखर पर, उच्चैः नदन्तं=उच्च स्वर से गरजते, नव अम्बु वाहं=नवीन मेघ के, इव=समान, रभसेन=अत्युत्सकता से, आलोकयन्ति=देखते है।

भावार्थ

हे देवाधि देव! जव आप स्वर्ण निर्मित उज्ज्वल रत्नजड़ित सिंहासन पर विराजमान होते है और गहन ओजस्वी दिव्य वाणी का अजस्र वर्षा करते हैं तव आपका साँवला शरीर ऐसा लगता है जैसे स्वर्णमय सुमेरु पर्वत पर वर्षाकालीन नवीन काली मेघ घटाएँ उमड-घुमड कर गरज रही है और भव्य प्राणी रूप मयूर अत्यधिक उत्सुक होकर आपको देखते हैं।

उद् गच्छता तव शिति द्युति मण्डलेन
लुप्तच्-छदच्-छविर शोक तरुर् वभूव!
सान्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग!
नीरागतां व्रजति का न सचेत-नोऽपि॥24॥

अन्वयार्थ

यदि=यदि, तव सान्निध्यत=आपके सान्निध्य से, अशोक तरु अपि=अशोक वृक्ष भी, तव उद्‌गच्छता=आपके स्फुरायमान, शिति द्युति मण्डलेन=उज्ज्वल प्रभा मण्डल से, लुप्तच् छदच् छवि.=छविहीन पत्रो वाला, बभूव=हो गया, वीतराग क=हे वीतराग प्रभो !, कौन सचेतन. अपि=चेतन होकर भी, नीरागतां=राग रहित दशा को, न व्रजति=नही पायेगा।

भावार्थ

हे वीतराग जिनपते ! आपके दिव्य दैदीप्यमान उज्ज्वल आभा मण्डल की प्रभा से अशोक वृक्ष के पत्तो की लालिमा भी लुप्त हो जाती है। तब ऐसा कौन सचेतन होगा जो आपके सत्सान्निध्य को पाकर हे प्रभो ! वीतराग भाव को प्राप्त न होवे।

भो भो: प्रमाद-मवधूय भजध्वमेन-
मागत्य निर्वृति पुरी प्रति सार्थवाहम्।
एतन् निवेदयति देव ! जगत् त्रयाय
मन्ये नदन् नभिनभ सुर दुन्दुभिस्ते ।।25 ।।

अन्वयार्थ

देव मेन्ये=हे देव मानता हूँ कि, अभिनभ =आकाश मे सर्व ओर, नदन्=गर्जना करती हुई, ते=आपकी, सुर दुन्दुभि =देव दुन्दुभि से, जगत् त्रयाय=त्रि जगत् के लिए, एतत् निवेदयति=यह सूचित करती है कि, भो भो =हे प्राणियो, प्रमादं अवधूय=प्रमाद को छोडकर, निर्वृतिपुरी=मोक्ष नगर को, प्रति=ओर जाने वाले, एनं=इन, सार्थ वाहं=सार्थवाह को, आगत्य=आकर, भजध्वम्=भजो।

भावार्थ

हे धर्मतीर्थ प्रवर्त्तक देव ! आकाश मे सर्वत्र गर्जन करती हुई देव दुन्दुभि त्रिभुवन वासी प्राणियो को यह सूचना देती है कि हे भव्य प्राणियो ! मोक्ष नगर की यात्रा करना चाहते हो तो प्रमाद को छोड कर मोक्षपुर जाने वाले इन मुक्ति सार्थवाहक की शरण मे आकर सेवा करो।

उद्द्योति तेषु भवता भुवनेषु नाथ !
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकार.।
मुक्ता कलाप कलितोल्लसि तात पत्र
व्याजात् त्रिधा धृत तनुर् ध्रुव मभ्युपेत ।।26 ।।

अन्वयार्थ

नाथ=हे स्वामिन्!, भवता=आपके द्वारा, उद्योति=प्रकाशित है, तेषु भुवनेषु=उन भुवनो पर, मुक्ता कलाप=मुक्ता समूह से, कलित=सुशोभित, उल्लसिता आतपत्र=श्वेत छत्रो के, व्याजात्=बहाने से, विहताधिकार.=अपने कर्त्तव्य से च्युत हुआ, अयं तारान्वित=यह नक्षत्रो सहित, विधु=चन्द्रमा, त्रिधा तनु:=तीन शरीर, धृत=धारण कर, ध्रुवं=निश्चय से, अभ्युपेत.=सेवा मे उपस्थित हो गया।

भावार्थ

हे अपूर्व तेज पुंज! आपने अपने दिव्य ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित कर दिया तीन जगत को, तव चन्द्रमा किसे प्रकाशित करे? इसलिए वह तीन छत्र रूप तीन शरीर धारण कर अपनी सेवा मे ही उपस्थित हो गया है।

स्वेन प्रपूरित जगत्त्रय पिण्डितेन
कांति प्रताप यशसा-मिव संचयेन।
माणिक्य हेम-रजत प्रवि-निर्मितेन
साल त्रयेण भगवन् नभितो विभासि ॥27 ॥

अन्वयार्थ

भगवन्=हे प्रभो!, अभित:=चारो ओर, माणिक्य हेम रजत=माणक, स्वर्ण, चॉदी, प्रविनिर्मितेन=विशेष रूप से बने, साल त्रयेण=तीन कोटो से, विभासि=सुशोभित हो रहे हैं, कांति प्रताप यशसां=काति प्रताप यश के, संचयेन=समूह से, स्वेन प्रपूरित=अपने को भरे हुए, जगतत्रय पिण्डितेन=त्रिभुवन के पिण्ड की, इव=तरह।

भावार्थ

हे प्रताप पुञ्ज! समवसरण भूमि मे आपके चहुँ ओर माणिक्य स्वर्ण और रजत के विशेष तीन कोट बने हुए हैं। मानो वे तीनों कोट आपकी शारीरिक काति, आपके प्रताप और आपका यश त्रिभुवन मे सर्वत्र फैलने के बाद आगे स्थान न मिलने से आपके चारो ओर त्रिकोट के रूप मे पिण्डीभूत हो गया है।

दिव्य स्रजो जिन! नमत् त्रिदशाधिपाना
मुत्सृज्य रत्न रचितानपि मौलि बन्धान्।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वा परत्र
त्वत् संगमे सुमनसो न रमन्त एव ॥28 ॥

अन्वयार्थ

जिन=हे जिनेन्द्र प्रभो !, दिव्य-स्रज =दिव्य पुष्प मालाएँ, नमत्=झुकते समय, त्रिदशाधि पानां=इन्द्रो के, रत्न रचितान्=रत्न जडित, मौलि बन्धान्=मुकटो के वन्धनो को, उत्सृज्य=छोडकर, अपि=भी, भवत. पादौ=आपके चरणो का, आश्रयन्ति=आश्रय लेती है, यदि वा=अगर, त्वत् सगमे=आपके मिलने पर, सुमनस.=पुष्पमालाएँ या सज्जन पुरुष, अपरत्र=दूसरी जगह, न एव रमन्ते=नही ही रमते है।

भावार्थ

हे त्रिलोक स्वामिन्! जब देवराज इन्द्र आपको नमस्कार करते है, तब उनके मुकटो मे लगी हुई दिव्य पुष्प मालाएँ रत्न जडित मुकटो का परित्याग कर आपके श्री चरणो का आश्रय लेती है, क्योकि आपके श्री चरणो का सम्पर्क हो जाने पर सज्जन स्वभावी पुरुषो को अन्यत्र कही भी सतोष नही मिलता है।

त्वं नाथ! जन्म जलधेर् विपराङ्मुखोऽपि
यत् तार यस्य सुमतो निज पृष्ठ लग्नान्।
युक्तं हि पार्थिव निपस्य सतस् तवैव
चित्रं विभो! यदसि कर्म विपाक शून्य ॥29॥

अन्वयार्थ

नाथ=हे दयानिधे !, त्वं=आप, जन्म जलधे:=ससार सागर से, विपराङ्मुख अपि=विमुख है फिर भी, यत् निज=क्यो अपने, पृष्ठ लग्नान्=पीठाश्रित, असुमत =जीवो को, पार्थिव निपस्य सत तवैव=पके हुए घडे के समान, तारयसि=तारते हो, युक्तं हि=साथ ही , विभो=हे भगवन् !, चित्रं=आश्चर्य है, यत्=कि, कर्मविपाक शून्य असि=कर्म विपाक रहित हो।

भावार्थ

हे कृपालुनाथ! जिस तरह जल मे अधोमुख रहा पक्का घडा अपनी पीठ पर बैठे मनुष्यो को जलाशय से पार कर देता है उसी तरह भव समुद्र मे विमुख हुए आप अपने अनुयायी भव्य भक्त जनो का पार उतार देते हो यह उचित ही है क्योकि आप समस्त भू-लोकादि के स्वामी है। परन्तु महान् आश्चर्य है कि घडा विपाक सहित है और आप विपाक रहित है।

विश्वेश्वरोऽपि जन पालक! दुर्गतस्त्वं
किं वाऽक्षर प्रकृति-रप्य लिपिस्त्व-मीश।

अज्ञान वत्यपि सदैव कथंचि देव
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्व विकास हेतु ॥30॥

अन्वयार्थ

जन पालक=हे जगदीश्वर !, त्वं=आप, विश्वेश्वर.=त्रिलोकीनाथ होकर, अपि दुर्गम्य=भी दुर्गम्य है, किं वा अक्षर=अथवा क्या अक्षर, प्रकृति.=स्वभाव होने पर, अपि त्वां=भी आपको, अलिपि=अलिखित है, ईश=हे परमेश्वर, अज्ञान वति=अज्ञान वत्, अज्ञ जनो के सरक्षक है, कथंचित् त्वयि इव=हर प्रकार से आप मे इस प्रकार, विश्व विकास हेतु=त्रिभुवन प्रकाशी, ज्ञानं सदैव=ज्ञान हमेशा ही, स्फुरति=प्रकाशमान रहता है।

भावार्थ

हे जग पालक ! आप अखिल विश्व के परम पिता परमेश्वर होने पर भी ससारी जीवो को प्राप्त होने अति दुर्लभ है। आपको जानना अत्यधिक कठिन है। अक्षर स्वभाव वाले होकर भी लिखे नही जाते अर्थात् अविनश्वर स्वभाव वाले होकर भी निराकार है। अज्ञानी प्राणियो का सरक्षण करने वाले आप मे विश्व को प्रकाशमान करने वाला केवल ज्ञान सदैव रहता है।

प्राग्भार संभृत नभांसि रजांसि रोषा
दुत्थापि तानि कमठेन शठेन यानि।
छायापि तैस्तव न नाथ हता हताशो
ग्रस्तस् त्वमीभि-रयमेव परं दुरात्मा ॥31॥

अन्वयार्थ

नाथ=हे नाथ, शठेन कमठेन=धूर्त कमठ ने, रोषात्=रोष से, तव=आप पर, प्राग्भार संभृत नभांसि=पूर्ण रूपेण आकाश को आच्छादित करने वाली, रजांसि उत्थापि तानि=धूलि उडाई उसने, तै=उससे, तु=तो, छायापि=आपकी छाया भी, न हता=मलिन न हुई, परं=परन्तु, अयमेव=वही, दुरात्मा=दुष्ट कमठ की आत्मा, हताश=हताश होकर, अमीभि.=उस रज से, ग्रस्त.=जकडा गया, मलिन बना।

भावार्थ

हे जित शत्रो ! दुश्मनी रखने वाले दुष्ट कमठासुर दैत्य ने आप पर क्रुध होकर भीषण धूलि वरसायी, जिससे सम्पूर्ण आकाश ढक जावे, किन्तु उसमे आपका तो क्या आपकी छाया भी प्रभावित नही हुई प्रत्युत उस धूलि से वह हताश दुरात्मा स्वय ही मलिन हो गया।

यद् गर्ज-दूर्जित-घनौघ-मदभ्र-भीमं
भ्रश्यत् तडिन् मुसल मांसल घोर धारम्।
दैत्येन मुक्त-मथ दुस्तर वारि दध्रे
तेनैव तस्य जिन! दुस्तर वारि कृत्यम्॥32॥

अन्वयार्थ

अथ=उसके बाद, जिन=हे जिनेश्वर!, दैत्येन=कमठासुर ने, गर्ज दूर्जित घनोघ=खूब गर्जते मेध समूह जिसमे ऐसी, भ्रश्यत् तडित्=तडतडाती हुई बिजली, मुसलमांसल=मूसल के समान मोटी, घोर धारम्=भयकर जलधारा, यत्=जो, दुस्तर वारि=अथाह जल, मुक्तं=निसकोच बरसाया, तस्य एव=उसके लिए ही, दुस्तर वारि=भयकर वर्षा का, कृत्यं=कृत्य, दर्ध्रे=घायल करने वाला हो गया।

भावार्थ

हे महाबल धीर जिनेश्वर! धूलि वर्षा के उस कमठासुर दैत्य ने आप पर घोरातिघोर जल वर्षा की, जिसमे विशालकाय महामेघो की गर्जना हो रही थी, बिजलियॉ तडतडा रही थी, मूसल के समान मोटी-मोटी जलधाराऍ बरस रही थी, जिनके अथाह जल को तैर कर पार करना कठिन था, किन्तु उससे आपको कोई हानि नही पहुॅची, प्रत्युत्त वह उस कमठ के लिए ही घायल करने वार स्वरूप सिद्ध हुई।

ध्वस्तोर्ध्व केश विकृताकृति मर्त्य मुण्ड
प्रालम्ब भृद् भयद वक्त्र विनिर्यदग्नि।
प्रेत व्रज प्रति भवन्त मपीरितो य
सोऽस्याऽभवत् प्रतिभवं भव दुख हेतु॥33॥

अन्वयार्थ

ध्वस्त ऊर्ध्व केश=बिखरे हुए केशो वाले, विकृत आकृति=विकराल आकृति वाले, मर्त्य मुण्ड=नरमुण्डो की, प्रालम्बभृद्=लम्वी माला धारण करने वाला, भयद वक्त्र=भयानक मुख से, विनिर्यदग्नि=आग निकलती हैं, य=जो, प्रेत व्रज अपि=पिशाच समूह भी, भवन्तं प्रति=आपकी ओर, ईरित=प्रेरित किया, स अस्य=वह इसके, प्रतिभवं=हरेक भव को, भव दुख हेतु=जनम दुख का कारण, अभवत्=हुआ।

भावार्थ

हे उपसर्ग विजयिन् ! क्रूर परिणाम वाले दुष्ट कमठासुर देत्य ने बिखरे हुए केशो, वकराल आकृति, नरमुण्डो की लम्बी माला धारण किए, मुख से भयानक अग्नि उगलने वाले पिशाचो के समूह को ध्यान तप साधना से चलायमान करने की खोटी नियत से भेजा। उससे आपका कुछ भी नही बिगडा, उल्टा उसी कमठ के दुष्कर्मो का बंध हुआ जिससे जन्म मरण रूप संसार दु.ख की वृद्धि हुई।

धन्यास्त एव भुवनाधिप! ये त्रिसन्ध्य
माराधयन्ति विधिवद् विधुतान्य कृत्या.।
भक्त्योल्लसत् पुलक पक्ष्मल देह देशा:
पाद द्वयं तव विभो! भुवि जन्म भाजः ॥34॥

अन्वयार्थ

भुवनाधिप विभो=हे त्रिलोक स्वामिन् प्रभो !, **भुवि**=संसार मे, **भक्त्या**=भक्ति से, **उल्लसत्**=उल्लसित, **पुलक पक्ष्मल**=पुलकित दृढ, **देह देशा**=शारीरिक अवयव है ऐसे, **ये**=जो, **जन्म भाजः**=प्राणी, **विधुतान्य कृत्या.**=छोडकर अन्य कार्यो को, **विधिवत्**=विधिपूर्वक, **तव पाद द्वयं**=आपके दोनो चरणो की, **त्रिसन्ध्यं आराधयन्ति**=तीनो सध्याओ मे आराधना करते है, **त एव धन्या.**=वे ही धन्य है।

भावार्थ

हे त्रिलोकी दीनानाथ! संसार मे वे ही प्राणी धन्य है जिनके शरीर का रोम-रोम आपकी भक्ति से रोमांचित होते है, अवयव पुलकित होते हैं और जो अन्य सांसारिक कार्यो को छोड कर आपके चरण सरोजो की विधिपृर्वक त्रिकाल सध्या समय मे उपासना करते है।

अस्मिन् नपार भव वारि निधौ मुनीश!
मन्ये न मे श्रवण गोचर तां गतोऽसि।
आकर्णिते तु तव गोत्र पवित्र मन्त्रे
किं वा विपद् विषधरी सविधं समेति? ॥35॥

अन्वयार्थ

मुनीश=हे मुनीन्द्र !, **मन्ये अस्मिन्**=मानता हूँ इस, **अपार भव वारि निधौ**=अथाह ससार सागर मे, **त्वं मे**=आप मेरे, **श्रवण गोचरतां**=कर्ण गोचर

न गत असि=न ही हुए हो, तव पवित्र=आपका पावन, गोत्र मन्त्रे=नाम रूपी मत्र, आकर्णिते तु=सुनने पर तो, विपद् विषधरी=विपदा रूपी नागिन, किं वा=क्या, सविधं=सन्निकट, समेति=आ सकती है ?

भावार्थ

हे संकट मोचक मुनीन्द्र ! इस अपार ससार सागर मे घूमते भटकते मैने आपकी उत्तम कीर्ति नही सुनी, क्योकि यदि आप के नाम का पवित्र मत्र भी सुनने मे आया होता तो क्या विपत्ति रूपी काली नागिन मेरे पास आती ? कभी नही ।

जन्मान्तरेऽपि तव पाद युगं न देव !
मन्ये मया महित मीहित दान दक्षम् ।
तेनेह जन्मनि मुनीश ! परा भवानां
जातो निकेतन-महं मथिताश-यानाम् ॥36 ॥

अन्वयार्थ

देव=हे जिनेश्वर देव !, मन्ये=मानता हूँ, जन्मान्तरे अपि=भव भवो मे भी, मया=मैने, ईहित=मनोवाछित, दान दक्षम्=फल देने मे समर्थ, तव पाद युगं=आपके चरण युगलो को, न महितं=नही पूजा, तेन=इससे, इह जन्मनि=इस जन्म मे, मुनीश=हे मुनीश्वर !, अहं=मै, मथिताशयानां=हृदय भेदी, मनोरथ नाशक, पराभवानां=तिरस्कारो का, निकेतन जात =घर बना हूँ ।

भावार्थ

हे वरद ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व जन्मो मे मैने मनोवाछित फल प्रदान करने मे समर्थ आपके पावन चरण सरोजो की सेवा उपासना नही की अन्यथा क्यो इस जन्म मे हृदय विदारक, असह्य तिरस्कारो का केन्द्र बनता ? आपका चरण सेवक कभी पराजित नही होता ।

नूनं न मोह तिमिरावृत लोचनेन
पूर्व विभो ! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्था
प्रोद्योत् प्रबन्ध गतय कथ-मन्यथैते ? ॥37 ॥

अन्वयार्थ

विभो=हे प्रभो !, मोह तिमिर=मोहान्धकार से, आवृत=आच्छादित, लोचनेन=आँखो से, पूर्व नूनं=पहले निश्चय से, सकृदपि=एक बार भी न

प्रविलोकित असि=नही दर्शन किए, अन्यथा=नही तो, प्रोद्यत प्रवन्ध गतय:=जिनकी प्रवन्ध गति अतिशय वलवती है ऐसे, एते मर्माविध.=ये मर्मभेदी, अनर्था: माम्=अनर्थ मुझको, कथं=कैसे, विघुरयन्ति=सताते ?

भावार्थ

हे कष्ट निवारक देव ! मेरी ऑखो पर मिथ्यात्व मोह का गहरा अधकार छाया रहा, जिससे मैंने पहले के जन्मो मे कभी भी आपके दर्शन नही किये। यदि मैंने आपके दर्शन किये होते तो उत्कट ससार परम्परा को वढाने वाले हृदय विदारक अनर्थ मुझे क्यो दु·खी करते ? क्योकि आपके दर्शन करने वाले भक्तो को कभी भी अनर्थ पीडित नही कर सकते ?

आकर्णि तोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जन वान्धव ! दुख पात्रं
यस्मात् क्रिया. प्रति फलन्ति न भाव शून्या ॥38 ॥

अन्वयार्थ

जन वान्धव=हे जग वन्धु !मैंने, आकर्णितोऽपि=नाम भी सुना हो, महितोऽपि=उपासना भी की हो, निरीक्षितोऽपि=दर्शन भी किए हो, किन्तु नूनं मया=निश्चय ही मेरे द्वारा, भक्त्या=भक्ति से, चेतसि=हृदय मे, न विधृत असि=धारण न किए गए हो, तेन=इससे, दुख पात्रं जात अस्मि=दुख का पात्र वना हुआ हूँ, यस्मात्=क्योकि, भाव शून्या. क्रिया =भाव रहित क्रिया, न प्रति फलन्ति=सफल नही होती हैं।

भावार्थ

हे जगवान्धव ! पूर्व किसी जन्म मे मैंने आपका नाम भी सुना हो, आपकी पूजा उपासना भी की हो तथा आपके दर्शन भी किये हो फिर भी यह तो निश्चय है कि मैंने श्रद्धा भक्ति भाव से कभी भी हृदय मे आपको धारण नहीं किया। इसीलिए तो अभी तक इस ससार मे मैं दु·खो का भाजन वना हुआ हूँ, क्योकि भावना रहित क्रियाएँ फलदायक नही होती हैं। जिस साधना और क्रिया मे भावना है, भक्ति है, हृदय है वही सफल होती है।

त्वं नाथ ! दु खिजन वत्सल ! हे शरण्य !
कारुण्य पुण्य वसते ! वशिनां वरेण्य !
भक्त्या न ते मयि महेश ! दयां विधाय
दु खां-कुरोद्-दलन तत्-परतां विधेहि ॥39 ॥

अन्वयार्थ

नाथ !=हे मालिक !, हे शरण्य=हे शरणागत प्रतिपाल, दु खिजन वत्सल=दुखियो पर स्नेह करने वाले, कारुण्य=हे करुणा निधान, पुण्य वसते=पवित्र धाम, वशिनां वरेण्य=हे योगीन्द्र, महेश त्व=हे महेश्वर आप, भक्त्या नते=भक्ति से झुके हुए, मयि=मुझ पर, दयां विधाय=दया करके, दु ख अंकुरोत् दलन=दुखी रूपी अकुर को नष्ट करने मे, तत्परतां=शीघ्रता, विधेहि=कीजिए।

भावार्थ

हे दयासिन्धु दयालु देव ! आप दु,खी जीवो के प्रति वात्सल्य भाव रखते है, शरण मे आने वालो के प्रतिपालक है, करुणा के पवित्र धाम है, जितेन्द्रिय पुरुषो मे सर्वश्रेष्ठ योगीन्द्र है तथा महेश्वर है। अत. श्रद्धा भक्ति भाव से विनम्र हुए मुझ पर दया करके दुःख के अकुर को जड मूल से उखाडने मे शीघ्रता कीजिए।

नि.संख्य सार शरणं शरणं शरण्य
मासाद्य सादित रिपु प्रथिताव दातम्
त्वत् पाद पंकजमपि प्रणिधान वन्ध्यो।
वध्योऽस्मि चेद् भुवन पावन! हा हतोऽस्मि ॥40॥

अन्वयार्थ

भुवन पावन=त्रिलोक पावनकर्ता, नि संख्या सार शरणं=मित्र बन्धु के अभाव मे प्रधानता से आश्रयदाता, शरणं=शरण देने वाले, शरण्यं=शरणागत के प्रति पालक, सादितरिपु=अष्ट कर्म शत्रुओ का नाश कर, प्रथितावदातं=स्वकीर्ति विख्यात करने वाले, त्वत् पाद पंकजं=आपके चरण कमलो को, असाद्य अपि=पाकर भी, प्रणिधान वन्ध्य =ध्यान नही किया, चेत्=यदि, वध्य अस्मि=अभागा फलहीन हूँ, हा हत अस्मि=हाय मै मारा गया।

भावार्थ

हे त्रिभुवन पावन पुरुष ! आपके चरण कमल अतुल वल के स्थान है, दीन दु खियो की रक्षा करने वाले है, शरणागत के प्रतिपालक है। कर्म शत्रु विजेता है, विश्वविख्यात यशस्वी पुरुष है। ऐसे पुरुष की मगलमय चरण शरण को पाकर भी यदि मै ध्यान से वचित रहा तो मुझ जैसा अभागा कौन है? हा! कर्मो की मार से ससार सागर मे इधर से उधर थपेडे खा रहा हूँ, दुख पा रहा हूँ।

देवेन्द्र वन्द्य! विदितखिल वस्तु सार
संसार तारक! विभो! भुवनाधि-नाथ!
त्रायस्व देव! करुणा हृद! मां पुनीहि
सीदन्त मद्य भयद व्यसनाम्बु-राशेः ॥41 ॥

अन्वयार्थ

देवेन्द्र वन्द्य=देवेन्द्रो से वन्दनीय, विदिताखिल वस्तु सार=जान लिया है सम्पूर्ण विश्व के सार भूत तत्त्व, संसार तारक=ससार से उद्धार करने वाले, विभो=हे प्रभो !, भुवनाधिनाथ=हे त्रिलाकी नाथ !, करुणाहृद=हे दया सरोवर, देव=हे देवाधिदेव !, अद्य माम्=आज मुझ, सीदन्तं=दु खिया को, त्रायस्व=रक्षा करो, भयदव्यसना=भयंकर दु ख रूपी, अम्बु राशे=सागर से, पुनीहि=पवित्र करो।

भावार्थ

हे प्रभो! आप स्वर्गाधपति इन्द्रो से वन्दनीय है। अखिल विश्व के नवनीत है, त्रिलोक के त्रिकालिक सर्व अवस्थाओ को जानने वाले है, ससार सागर से पार उतारने, उद्धार करने वाले है, त्रिलोक के स्वामी है, करुणा के सागर है देव! घोर सकटो के सागर मे डूबने से मुझे बचाओ, मुझे पवित्र बनाओ।

यद्यस्ति नाथ! भवदंघ्रि सरोरुहाणां
भक्तेः फलं किमपि सन्तत संचिताया।
तन्मे त्वदेक शरणस्य शरण्य! भूयाः
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्त रेऽपि ॥42 ॥

अन्वयार्थ

नाथ=हे नाथ !, त्वदेक=एक आप ही, शरणस्य=शरण जिसको, मे=मुझे, सन्तत संचिताया =अविराम सचित की, भवद=आपके, अंध्रि सरोरुहाणां=चरण कमलो की, भक्तेः=भक्ति का, यदि किमपि=यदि कुछ भी, फलं अस्ति=फल है, तत्=वह, शरण्य=हे आश्रयदायक, त्वमेव=आप ही, अत्र भुवने=इस लोक मे, भवान्तरेऽपि=परलोक मे भी, स्वामी भूया.=स्वामी होवे।

भावार्थ

हे नाथ! मै एक अतीव निम्न श्रेणी का भक्त हूँ। आप की स्तुति कर मै आपसे अन्य किसी फल की चाह नही रखता, आपके चरण कमलो की कि सचित भक्ति का कुछ भी फल हो तो हे शरणागत वत्सल। भव भवान्तर मे आप ही मेरे स्वामी बने। मुझे यही फल अपेक्षित है और कुछ भी नही।

इत्थं समाहित धियो विधि-वज्जिनेन्द्र!
सान्द्रो-ल्लसत्पुलक कंचुकि-तांग भागा·।
त्वद् बिम्ब निर्मल मुखाम्बुज बद्ध लक्ष्या.
ये संस्तवं तव विभो! रचयन्ति भव्या ॥43 ॥

अन्वयार्थ

जिनेन्द्र=हे जिनेन्द्र भगवन्!, ये समाहित=जो सावधान, धियो.=बुद्धि वाले, भव्या त्वद्=भव्य आपके, बिम्ब निर्मल मुखाम्बुज=निर्मल मुख कमल की ओर, बद्ध लक्ष्या=अपलक लक्ष्य करके, सान्द्र=सघन रूप से, उल्लसत्=उठे हुए, पुलक=रोमाचो से, कंचुकित=व्याप्त, अंगभागा =अग वाले होकर, विभो तव=हे प्रभो ! आपकी, इत्थं विधिवत्=इस विधि मे, संस्तवं रचयन्ति=स्तुति रचते है।

भावार्थ

हे जितेन्द्रिय जिनेश्वर ! अटल श्रद्धा रखकर स्थिर बुद्धि वाले प्रेमाधिक्य के कारण अतीव सघन रूप से उल्लसित हुए, रोमाचो से व्यापत अंग वाले होकर निरन्तर आपके मुख कमलाकृति की ओर अनिमेष दृष्टि रखते हैं, जो भव्य प्राणी आपकी विधि सहित स्तुति करते है, गुणानुवाद करते है।

जन नयन कुमुद चन्द्र!
प्रभास्वरा. स्वर्ग सम्पदो भुक्त्वा।
ते विगलित मल निचया
अचिरान् मोक्षं प्रपद्यन्ते ॥44 ॥

अन्वयार्थ

जन नयन=प्राणियो के नेत्र रूपी, कुमुद चन्द्र=कुमुदो को चन्द्रवत् प्रकाशित करने वाले, ते प्रभा वरा =वे देदीप्यमान, स्वर्ग सम्पदो=स्वर्ग की विभूतियो को, भुक्त्वा=भोगकर, विगलित=दूर किया है, मल निचया =मल समूह को, अचिरात् मोक्षं=शीघ्र मोक्ष को, प्रपद्यन्ते=प्राप्त करते है।

भावार्थ

हे भव्य प्राणियो के नेत्र रूपी कमलो को विकसित करने वाले चन्द्र सदृश प्रभो। वे आपके भक्तगण देवलोक की दिव्य विभूतियो को भोगकर अष्ट कर्म मल को दूर करके शीघ्र मोक्ष को प्राप्त करते है।

□

चिन्तामणि स्तोत्र

किं कर्पूर मयं सुधारस-मयं, किं चन्द्र-रोचिर्मयं
किं लावण्य मयं महामणि मयं, कारुण्य केली मयम्।
विश्वा-नन्द मयं महोदय मयं, शोभामयं चिन्मयं
शुक्ल ध्यान मयं वपुर्जिन-पतेर्भूयाद् भवालम्बनम्॥1॥

अन्वयार्थ

किं कर्पूरमयं=क्या कपूर सा, **सुधारस मयं**=अमृतरस से युक्त, **किं चन्द्ररोचिर्मयं**=क्या लावण्य सम्पदा, **महामणि मयं**=महामणि सदृश, **कारुण्य-केली मयं**=करुणा के अजस्र स्रोत, **विश्वानंदमयं**=ससार के लिए आनन्दमय, **महोदयमयं**=महान् अभ्युदय युक्त, **शोभामयं**=शोभायुक्त, **चिन्मयं**=चैतन्य स्वरूप, **शुक्ल ध्यानमयं**=शुक्ल ध्यान रूप, **जिनपतेः**=जिनेन्द्र भगवान का, **वपु**=शरीर, **भवालम्बनम्**=ससार मे आधारभूत, **भूवाद्**=होवे।

भावार्थ

कपूर सम दिव्य सुगन्धित, अमृत सदृश जीवनदायक, चन्द्र किरण सम शीतल, उज्ज्वल महामणि सम प्रकाशवान, सौन्दर्ययुक्त, करुणा भाव के निर्झर, ससार को आनन्ददायी, महान् अभ्युदय वाले, शोभा श्री सम्पन्न, चैतन्य स्वरूप, शुक्ल ध्यान वाला, जिनेन्द्र भगवान का वंदन संसार मे शरण देने वाला होवे।

पातालं कलयन् धरां धवलयन् नाकाशमापूरयन्
दिक्चक्रं क्रमयन सुरासुर नर, श्रेणी च विस्मापयन्।
ब्रह्माण्डं सुखयन् जलानि जलधे, फेनच्छलाल् लोलयन्
श्रीचिन्तामणि पार्श्व संभव यशो, हंसश्चिरं राजते॥2॥

अन्वयार्थ

पातालं कलयन्=पाताल को पूरित करता हुआ, **धरां धवलयन्**=भूतल को श्वेत करता हुआ, **आकाशमापूरयन्**=आकाश को व्याप्त होता हुआ, **दिग्चक्रं**=दिशामण्डल को, **क्रमयन**=उल्लघता हुआ, **सुरासुर**=देवो, देत्यो, नर **श्रेणीं च**=और नर समूह को, **विस्मापयन्**=आश्चर्य चकित करता हुआ, **ब्राह्माण्डं**=ब्रह्माण्ड को, **सुखयन्**=सुखी करता हुआ, **फेनच्छलात्**=फेन के वहाने से, **जलधेः**=सागर के, **जलनि**=जल को, **लोलायन**=काँपता हुआ, **श्री चिन्तामणि**

पार्श्व संभव=श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ से उत्पन्न, यशो हंस=यश रूपी हस, चिरं=दीर्घकाल तक, राजते=शोभायमान हो रहा है।

भावार्थ

चिंतामणि श्री पार्श्वनाथ भगवान् का यश रूपी हस अपने शब्दो से पाताल लोक को पूरित करता हुआ, अपनी श्वेतता से भूलोक को धवल बनाया, अपने विस्तार से आकाश को अर्थात् उर्ध्वलोक को व्याप्त होता हुआ समग्र दिशाओ की सीमा को पार कर गया। उसने स्वर्गवासी देवो को विस्मित, पाताल लोक के असुरो को चकित और भूलोक के मानवो को स्तब्ध कर दिया। उसने अपनी लीला-क्रिया कलापो से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को सुखी बनाया, सागर के जल को झकझोर कर उसने फेन मय बना दिया। वह भगवान पार्श्वनाथ का यश हस चिरकाल तक शोभित होता रहे।

पुण्यानां विपणिस्तमो दिन मणि कामेभ कुम्भे सृणि
मोक्षे निस्सरणि सुरेन्द्रकरिणी ज्योति प्रकाशारणि।
दाने देव मणि र्नतोत्तम जन, श्रेणि कृपा सारिणि
विश्वानंद-सुधा-घृणि-र्भवभिदे, श्री पार्श्वचिन्तामणि ॥3॥

अन्वयार्थ

पुण्यानां विपणि=पुण्यो का प्रमुख केन्द्र, तमो-दिन मणि=अन्धकार के लिए सूर्य, कामेभ=कामोन्मत्त, कुम्भे=हस्ती के लिए, सृणि=अकुश, मोक्षे निसरणि=मोक्ष महल पर चढने के लिए सीढी, सुरेन्द्रकरिणी=इन्द्र पद देने वाले, ज्योति प्रकाशारणि=तेज प्रस्फुटन के लिए अरणि, दाने देव मणि=दान मे चिन्तामणि, नत उत्तम=नमस्कृत उत्तम, जनश्रेणि=मनुष्यो के समूह से, कृपा सारणि.=अनुग्रह की नहर, विश्वानंद-सुधा घृणि=ससार को आनन्द देने अमृत प्रवाह रूप, श्री पार्श्व चिन्तामणि=श्री चिंतामणि पार्श्व प्रभो, भव=ससार को, भिदे=भेदे।

भावार्थ

जैसे समस्त पदार्थो के मिलने का स्थान वाजार होता हे वैसे ही आप पुण्यकर्मो-सुखो के प्रधान केन्द्र है, जिस तरह सूर्य अधकार का नाशक है उसी तरह आप ससार के अज्ञान अधकार को दूर करने के लिए सूर्य से अधिक प्रकाशमान है, कामवासना रूपी मदोद्धत गजराज को वश करने के लिए अकुश समान है, मोक्ष-प्रासाद पर चढने के लिए सोपान तुल्य हैं, देवेन्द्र पद को देने वाले है, अर्थात् भक्तो के अभिलाषा को पूर्ण करने मे कल्प वृक्ष सदृश है, कर्मो

से आवृत्त चेतना की अन्तर्ज्योति के स्फुटन के लिए अरणि समान है, भेदभाव रखे बिना चिन्तामणि सम चिन्ता को हरने वाले है सर्वजगत् की, ससार के श्रेष्ठ जनो, भक्तो से वदनीय, कृपावतार है, ससार के संतप्तजनो के लिए आनन्द रूप अमृत प्रवाह के समान है। ऐसे श्री चितामणि पार्श्वनाथ भगवान जन्म जरा मरण रूप संसार का भेदन करे।

श्रीचिंतामणि पार्श्व विश्व जनता, संजीवनस्त्वं मया
दृष्टस् तात! ततः श्रियः सम्भवन्, नाशक्रमा चक्रिणम्।
मुक्ति क्रीड़ति हस्तयोर् बहुविधं सिद्धं मनोवांछितं
दुर्दैवं दुरितं च दुर्दिन भयं, कष्टं प्रणष्टं मम ॥4॥

अन्वयार्थ

तात=हे लोक रक्षक, **श्री चिन्तामणि पार्श्व**=श्री चितामणि पार्श्वनाथ प्रभो!, **त्वं**=आप, **मया**=मेरे द्वारा, **विश्व जनता**=ससारी प्राणियो के लिए, **संजीवनः**=प्राण रूप, **दृष्टः**=देखे गए है, **तत.**=इसलिए, **आशक्रम्**=इन्द्र से लेकर, **आचक्रिणम्**=चक्रवर्ती तक की, **श्रियः**=सम्पदाएँ, **न समभवन्**=आपके समान नही है, **मुक्तिः**=मुक्ति, **हस्तयोः**=हाथो पर, **कीड़ति**=खेलती है, **बहुविधं**=अनेक प्रकार के, **मनोवांछितं**=मनोरथ, **सिद्धं**=सिद्ध हुए, **दुर्दैवं**=दुर्भाग्य, **दुरितं**=पापकर्म, **दुर्दिन**=बुरे दिन, **भयं**=भय, **च कष्टं**=और कष्ट, **प्रणष्ट मम**=विनष्ट हो गए है मेरे।

भावार्थ

हे प्रभो! आप मन चिन्तित आशाओ को यथार्थ रूप मे पूर्ण करने से आप ही चिन्तामणि है। ससार के समस्त प्राणियो के जीवन सरक्षण के रूप मे मुझे दृष्टिगोचर हुए, आपकी अनन्य कृपा से इन्द्र का ऐश्वर्य, चक्रवर्ती की ऋद्धि और साधको की सिद्धि-मुक्ति हाथो मे खेलने लगीं है, दुर्भाग्य, दुष्कर्म, अशुभ-दिन, भय और कष्ट आदि सब मेरे नष्ट हो गए है।

यस्य प्रोढतम-प्रताप-तपन. प्रोद्दाम-धामा-जगज्,
जंघालः कलिकाल केलि दलनो, मोहान्ध विध्वंसकः।
नित्योद्योत पदं समस्त कमला, केली गृहं राजते
स श्री पार्श्वजिनो जने हितकरश्, चिंतामणि. पातु माम् ॥5॥

अन्वयार्थ

यस्य=जिनका, **प्रोढतम-प्रताप-तपन**=अत्यन्त प्रौढ प्रताप रूप सूर्य, **प्रोद्दाम-धामा**=अत्यन्त प्रखर तेजमय, **जगज्जंघाल**=सम्पूर्ण जगत को लाघने

वाला, कलिकाल-केलि दलन=कलयुगी क्रीडा को दलने वाला, मोहान्ध विध्वंसक=मोह अन्धकार का विध्वसक है, नित्योद्योत=नित्य प्रकाश रूप, पदं=चरण, समस्त-कमला=सर्वसम्पदाओ की, केली=क्रीडा के लिए, गृहं=गृह स्वरूप, राजते=शोभायमान हो रहे है, स चिंतामणि श्री पार्श्वजिन.=वे चितामणि श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र, जने हितकर=प्राणियो का हित करने वाले, माम्=मेरी, पातु=रक्षा करे।

भावार्थ

चिंतामणि श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र भगवान का नित्य प्रकाशमान चरण समस्त लक्ष्मी का क्रीडास्थल है, जिनका अत्यन्त प्रोढ प्रताप रूप सूर्य की अत्यन्त प्रखर तेजस्वी किरणे मोहान्धकार को नष्ट करने वाली है, ससार के चरित्र को जानने वाले है, कलयुगी कुत्सित वासनाओ-कामनाओ को दलने वाले है, ससारी जीवो के कल्याण के लिए चिन्तामणि रत्न सदृश है वे मेरा रक्षण करे।

विश्वव्यापि तमो हिनस्ति तरणिर्बालोऽपि कल्पांकुरो
दारिद्र्याणि गजावली हरि शिशु, काष्ठानि वह्ने कण.।
पीयूषस्य लवोऽपि रोग निवहं, यद् वत् तथा ते विभो
मूर्ति स्फूर्ति मती सती त्रिजगती, कष्टानि हर्तु क्षमा ॥6॥

अन्वयार्थ

विभो=हे प्रभो!, यद्वत्=जैसे, बालोऽपि=उदित होता भी बाल, तरणि=सूर्य, विश्वव्यापि=ससार मे छाये, तम=अन्धकार को, कल्पांकुर=कल्पवृक्ष का अकुर, दारिद्र्याणि=दरिद्रता को, हरिशिशु=सिंह का बच्चा, गजावली=हाथियो की पक्ति को, वह्ने कण=अग्नि कण, काष्ठानि=काष्ठो को, पीयूषस्य लव अपि= अमृत का बिंदु भी, रोगनिवहं=रोगो के समूह को, हिनस्ति=नष्ट कर देता है, तथा ते=वैसे ही आपकी, स्फूर्तिमती=दीप्तिमत, सती=हुई, मूर्ति=मुख मुद्रा, त्रिजगती=तीनो जगत के, कष्टानि हर्तु.=कष्टो को हरने के लिए, क्षमा=समर्थ है।

भावार्थ

हे भगवन्! उदय होने वाला बाल सूर्य भी ससार मे फैले हुए अन्धकार को नष्ट कर देता है, कल्पवृक्ष का अकुर दरिद्रता को दूर कर देता है, सिंह का नन्हा सा बच्चा भी हस्ति झुंड को छिन्न-भिन्न कर देता है, अग्नि की जरा सी चिनगारी काष्ट समूह को भस्म कर देती है, अमृत का विंदु भी रोगो को समूल नष्ट कर देता है। इसी प्रकार आपका तेजोमय जीवन त्रिभुवन के कष्टो-दुःखो को नष्ट करने मे समर्थ है।

श्रीचिन्तामणि मन्त्रमोंकृति युत्तं, ह्रीकार साराश्रितं,
श्रीमर्हन् नमिऊण पास कलितं त्रै लोक्य वश्यावहम्।
द्वेधाभूत विषापहं विषहरं, श्रेयः प्रभावाश्रयं,
सोल्लासं वसहांकितं, जिन फुलिंगा-नन्ददं देहिनाम् ॥7॥

अन्वयार्थ

ओंकृतियुत्तं=ॐकार से युक्त, ह्रीकार साराश्रितं=ह्रीकार रूप सार पद आश्रित को, श्रीमर्हन् नभिऊण पास कलितं=श्री अर्ह नभिऊण पास से आबद्ध मत्र, त्रैलोक्य वश्यावहं=त्रिभुवन को वश करने वाला, द्वेधा भूत विषापहं=त्रस और स्थावर प्राणियो से उत्पन्न विष को दूर करने वाले, विषहरं=धातु-जनित विष को हरने वाले, श्रेयः प्रभावाश्रयं=कल्याणकारी प्रभाव के आश्रयदाता, सोल्लासं=वह उल्लासमय है, वसहांकितं=व स ह पद से चिह्नित है, देहिनां=देह धारियो को, जिनः स्फुलिंग आनंददं=जिन देव के समान आनद देने वाला, श्रीचिंतामणि मंत्र=श्रीचिन्तामणि मंत्र है।

भावार्थ

चिंतामणि मन्त्र ॐ बीजाक्षर वाला, ह्री माया बीज को आश्रय देने वाला, श्री लक्ष्मी बीजाक्षर से सम्पन्न, अर्ह पद से वेष्टित, नमिऊण से आबद्ध है। यह मंत्र तीन लोक को वश मे करने वाला, त्रस स्थावर जीवो से उत्पन्न विष का निवारण करने वाला, वासना रूप विषय विष को दूर करने वाला, कल्याणकारी प्रभाव को रखने वाला, समृद्धशाली है, व स ह इन अक्षरो चिह्नित यह चिन्तामणि मंत्र समस्त देहधारियो को ऋद्धि सिद्धि और मुक्ति के आनंद को देने वाला है।

ह्री श्रीकार वरं नमोऽक्षर परं ध्यायन्ति ते योगिनो
हृत्पद्मे विनिवेश्य पार्श्व-मधिपं चिंतामणि संज्ञकम्।
भाले वाम भुजे च नाभि करयोर भूयो भुजे दक्षिणे
पश्चादष्ट दलेषु ते शिव पदं, द्वि त्रैर्भवै र्यान्त्यहो ॥8॥

अन्वयार्थ

ह्री श्रीकार-वर=ह्री श्री से श्रेष्ठ, नमोऽक्षर परं=नम अक्षर अन्त मे है, चिन्तामणि संज्ञकं=चिन्तामणि नाम वाले, अधिपं=स्वामी, पार्श्व=पार्श्वनाथ को, हृत=हृदय, पद्मे=कमल मे, भाले=भाल मे, वाम भुजे=वॉयी भुजा मे, नाभि करयो=नाभि और दोनो हाथो पर, च भूय.=और पुन, दक्षिणे भुजे=दक्षिण भुजा पर, पश्चात्=फिर, अष्ट-दलेषु=अष्ट पत्र वाले कमल मे, विनिवेश्य=स्थापन करके, ये योगिन=जो योगीजन, ध्यायन्ति=ध्यान करते है, ते द्वि त्रै.=वे दो तीन, भवैः=भवो से, अहो=आश्चर्य है, शिव पदं=शिव पद को, यान्ति=जाते है।

भावार्थ

ह्री और श्री कार से समन्वित और अन्त मे नम है चितामणि सज्ञा वाले भगवान् पार्श्वनाथ का जो योगीजन हृदय कमल मे अष्ट दल की स्थापना करके ध्यान करते है, अथवा श्री चिन्तामणि मत्र को अपने भाल पर, वाम (बॉयी) भुजा, नाभि स्थल पर, या दोनो हाथो पर, दाहिनी भुजा पर ध्यान करते है वे दो तीन भवो मे शिव पद को प्राप्त कर लेते है। यह आश्चर्य है।

नो रोगा नैव शोका, न कलह कलना नारि मारि प्रचारा
नैवाधि-र्नासमाधिर् न च दर दुरिते दुष्ट दारिद्रता नो।
नो शाकिन्यो ग्रहा नो, न हरि करि गणा व्याल वेताल जाला
जायन्ते पार्श्व चिंतामणि नति वशत, प्राणिनां भक्ति भाजाम्॥9॥

अन्वयार्थ

भक्ति भाजाम्=भक्ति करने वाले, **प्राणिनां**=प्राणियो के, **पार्श्व चिन्तामणि**=चिंतामणि पार्श्व प्रभू को, **नतिवशत.**=नमस्कार करने से, **नो रोगा** =न रोग होते है, **न एव शोका:**=न ही शोक होते है, **न कलह कलना**=न झगडे होते है, **न अरि-मारि प्रचारा.**=न शत्रुता का, महामारी का प्रसार होता है, **न एव आधि.**=न ही मानसिक वेदना होती है, **न असमाधि** =न असमाधि होती है, **न च दर-दुरिते**=और न भय-सकट होते है, **नो दुष्ट दारिद्रता**=न दुष्ट दरिद्रता होती है, **नो शाकिन्य**=न शाकिन डाकिनी, **नो ग्रहा** =न ग्रह, **न हरि करि गणा** =न सिह हाथी समूह, **व्याल वेताल जाला** =सर्प वेतालादि उपद्रव ही, **जायंते**=उत्पन्न होते है।

भावार्थ

चिन्तामणि पार्श्वनाथ भगवान् को भक्ति भाव से ध्याने वाले, नमस्कार करने वाले भक्तो को न रोग आता है, न शोक होता है, न कलह-युद्ध होता है, न शत्रु वनते है, न ईति-भीति अर्थात् महामारी प्रभावित करती है, न मानसिक दुख द्वन्द्व होता है, न शारीरिक कष्ट वेदना होती है और न चित्त विक्षेप होता है, न भय-पाप तथा दरिद्रता वहॉ रहती है, शाकिनी-भूत-पिशाच और ग्रहजनित भय, सर्प, सिह, गजराज का उपद्रव भी नही होता है।

गीर्वाण-द्रुम धेनु-कुम्भ-मणयस् तस्यांगणे रिंगिणो
देवा दानव मानवा सविनयं तस्मै हित ध्यायिन
लक्ष्मीस्तस्य वशाऽवशेव गुणिनां ब्रह्माण्ड संस्थायिनी
श्रीचितामणि पार्श्वनाथ-मनिशं संस्तौति यो ध्यायति॥10॥

अन्वयार्थ

यः=जो साधक, श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथं=श्रीचिंतामणि पार्श्व प्रभु को, अनिशं=निरन्तर, संस्तौति=स्तुति करता है, ध्यायति=ध्यान करता है, तस्य अंगणे=उसके ऑगन मे, गीर्वाण द्रुम=कल्प वृक्ष, धेनुः कुम्भ मणयः=काम धेनु, कामकुभ, चिन्तामणि रत्न रिंगिण=क्रीडा करते है, तस्मै=उसके लिए, देवा. दानव मानवाः=देवता, राक्षस, मानवगण, सविनयं हितं ध्यायिन=नम्रता के साथ हित कामना करते है, तस्य ब्रह्माण्ड संस्थायिनी=उसको त्रिभुवन मे रहने वाली, लक्ष्मीः=लक्ष्मी, गुणिनां वशा=गुणीजनो के अधीनता की, अवशा-इव=तरह अधीन रहती है।

भावार्थ

जो भक्त चिन्तामणि पार्श्वनाथ प्रभु का सदैव भाव सहित स्तुति करता है, उनका ध्यान करता है उसके घर के ऑगन मे कल्पवृक्ष, कामधेनु, कामकुम्भ और चिन्तामणि रत्न सदा विद्यमान रहते है, उसके मगलमय आरोग्यपूर्ण जीवन की देव-दानव और मानव सभी हित कामना रखते है। गुणी सत्पुरुषो के अधीन रहने वाली लक्ष्मी विवश होकर अधीन हो जाती है।

इति जिन पति पार्श्वः पार्श्व पार्श्वाख्य यक्ष
प्रदलित दुरितौघः, प्रीणित. प्राणि सार्थः।
त्रिभुवन जन वाञ्छा दान चिन्तामणीकः
शिव पद तरुबीजं बोधि बीजं ददातु ॥11॥

अन्वयार्थ

इति=इस प्रकार, पार्श्व पार्श्वाख्य यक्षः=पार्श्व नामक यक्ष जिनके पार्श्व मे है, प्रदलित दुरितौघः=पाप पुज के विनाशक है, प्रीणित=हर्षोत्पादक है, प्राणि सार्थः=प्राणियो के, त्रिभुवन जनवांछा=तीन जगत के लोगो की इच्छा पूर्ण करने मे, दान चिंतामणिकः=चिन्तामणि सम दानी है।, जिन पति पार्श्वः=ऐसे श्री पार्श्व जिनेन्द्र, शिव पद तरु बीजं=मोक्ष पद रूपी वृक्ष के बीज स्वरूप, बोधि बीजं=बोधि बीज को, ददातु=देवे।

भावार्थ

पार्श्व नामक यक्ष जिनकी सेवा मे पार्श्व-निकट-बगल मे खडा है, जिन्होंने सम्पूर्ण पापकर्मो के समूह का अन्त कर दिया, सबके लिए आनन्दकर है जो कामना के अनुसार मनोरथपूर्ण करने मे चिन्तामणि सदृश है वे पार्श्वनाथ जिनेन्द्र मोक्ष रूपी वृक्ष का सम्यक्त्व रूप बीज बोध स्वरूप मे मुझे देवे।

□

महावीराष्टक स्तोत्र

यदीये चैतन्ये मुकुर इव, भावाश्चिद-चित
सम भान्ति ध्रौव्य व्यय जनि, लसंतोन्त-रहिता ।
जगत् साक्षी मार्ग प्रकटन परो भानु रिव यो
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥1 ॥

अन्वयार्थ

यदीये=जिनके, **चैतन्ये**=ज्ञान मे, **ध्रौव्य-व्यय जनि लसन्त**=ध्रौव्य, व्यय, उत्पाद से युक्त, **अन्त रहिता.**=अनन्त, **चिद, चितः**=चेतना और अचेतन, **भावा**=पदार्थ, **मुकुर इव**=दर्पण के समान, **समं भाँति**=साथ प्रतिविम्बित होते है, **जगत् साक्षी**=त्रिभुवन को साक्षात् देखने वाले, **भानु-इव**=सूर्यवत, **य**=जो, **मार्ग प्रकटन परः**=सत्पथ मोक्ष मार्ग दिखाने मे तत्पर है वे, **महावीर स्वामी**=महावीर स्वामी, **नयन पथगामी**=दृष्टिगोचर, **मे**=मेरे, **भवतु**=होवे ।

भावार्थ

जिस तरह दर्पण मे सम्मुख रहे पदार्थ एक साथ एक ही समय मे प्रतिविम्वित होते है। उसी प्रकार सन्मति प्रकाशक वीर प्रभु के केवलज्ञान रूपी दर्पण मे चेतन-अचेतन पदार्थ अपने-अपने उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य स्वभाव से युगपत् प्रतिभासित होते है। जो सम्पूर्ण चराचर विश्व की त्रिकालिक त्रिअवस्थाओ को ज्ञाता द्रष्टा भाव से देखते है, जो सूर्य के समान मोक्ष मार्ग को प्रकट करने वाले है वे शासनाधिपति तीर्थेश प्रभु महावीर मेरे दृष्टिगोचर होवे ।

अताम्रं यच्चक्षु कमल युगलं स्पन्द रहितं,
जनान् कोपाऽपायं प्रकटयति वाऽभ्यन्तर मपि।
स्फुटं मूर्तिर् यस्य प्रशमित मयी वाऽति विमला,
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे ॥2 ॥

अन्वयार्थ

अताम्रं=लालिमा रहित, **स्पंद रहितं**=परिस्पदन रहित, **यच्चक्षु**=जिनके नयन, **कमल युगलं**=कमल युगल को, **जनान्**=मनुष्यो को, **अभ्यन्तरं अपि**=आन्तरिक और वाह्य भी, **कोपाऽपाय**=क्रोध के अभाव को, **प्रकटयति**=प्रकट करती है, **यस्य मूर्ति**=जिनकी आकृति, **स्फुटं**=स्पष्ट रूप से, **प्रशमितमयी**=अत्यन्त शात है, **अति विमला**=अत्यन्त निर्मल है, **महावीरस्वामी नयन पथगामी भवतु मे**=भगवान् महावीरस्वामी मेरे दृष्टिगोचर होवे ।

भावार्थ

हे कोपि विजयिन्! आपके उभयनेत्र कमल क्रोध चिह्न से रहित निश्चल है वे मानो आतरिक और बाह्य क्रोध से मनुष्यो को जो अनेक प्रकार के नुकसान और अहित होते है उनसे बचने का संसूचन कर रहे हैं और जिनकी मुख मुद्रा परम शान्त तथा जीवन अत्यन्त निर्मल है वे सन्मति धारक! श्रमण भगवान् महावीर मेरे दृष्टिगोचर होवे।

नमन्ना केन्द्राली-मुकुट मणि-भा जाल जटिलं,
लसत् पादाम्भोज द्वय-मिह यदीयं तनु भृताम्।
भव ज्वाला शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे ॥3 ॥

अन्वयार्थ

यदीयं=जिनके, **नमन नाकेन्द्राली**=नमन करते हुए देवेन्द्र समूह के, **मुकुटमणि भा**=मुकुट मणियो के काति पुञ्ज से, **जाल-जटिल**= खच खचित, **लसत्-पादाम्भोज द्वयं**=सुशोभित चरण युगल, **इह**=इस लोक मे, **तनु भृतां**=देहधारियो को, **भव ज्वाला शान्तयै**=भव अग्नि-ज्वाला को शान्त करने मे, **प्रभवति**=समर्थ है, **स्मृतं अपि**=स्मरण मात्र भी, **वा जलं**=अथवा जल को , **स. महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु में**=वे महावीर स्वामी मेरे दृष्टिगोचर होवे।

भावार्थ

हे अध्यात्म पथ दिनेश! आपके चरण सरोजो में नमस्कार करते देवराज इन्द्र के मुकुट जडित मणियो को क्रांति से सुशोभित कर रहे है, अथवा इस लोक मे देहधारियो की जन्म-मरण रूप वडवानल की ज्वाला को शात करने के लिए जिनका स्मरण भी जल के समान समर्थ है वे अन्तर्यामी त्रिलोकी नाथ भगवान् महावीर स्वामी मेरे दृष्टिगोचर होवे।

यदर्चा भावेन प्रमुदित मना दर्दुर इह
क्षणा-दासीत् स्वर्गी गुण गण समृद्ध सुख निधि ।
लभन्ते सद् भक्ता शिव सुख समाजं किमु तदा,
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे ॥4 ॥

अन्वयार्थ

यदर्चा भावेन=जो पूजा के भाव से, **प्रमुदित मना**=हर्षित मन हुआ, **दर्दुरः**=मेढक, **इह क्षणात्**=इस लोक मे क्षण भर मे ही, **स्वर्गी**=स्वर्ग का देव, **गुण-गण-समृद्धः**=गुण समूह से सम्पन्न, **सुखनिधि.**=सुख का निधान,

आसीत=हुआ, सदभक्ता.=सच्चे भक्त, शिव-सुख-समाजं=कल्याण रूप अक्षय, सुख समूह को, लभते=पाते है, तदा=तव, किं=क्या ?, महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु में=वे महावीर स्वामी मेरे दृष्टिगोचर होवे।

भावार्थ

हे गुण रत्नाकर! आपके आगमन के श्रवण-स्मरण से भाव-विभोर वना मेढक क्षण मात्र मे अणिमा-महिमादि अनेक गुण रूपी ऋद्धियो से समृद्ध, सुख सम्पन्न स्वर्ग का देव हो गया तो आपकी अन्तर्हृदय से भक्ति करने वाले सच्चे भक्त मोक्ष के अक्षय निराबाध सुख को पाते है तो इसमे कोई विस्मयजनक विशेषता नही है, हे उदात्तहृदयी भगवान महावीर मेरे दृष्टिगोचर होवे।

कनत् स्वर्णाभासोऽप्यपगत तनु र्ज्ञान निवहो,
विचित्रात्मा-प्येको नृपति वर सिद्धार्थ तनय।
अजन्माऽपि श्रीमान् विगत-भव-रागोद्-भुत गतिर्-
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे॥5॥

अन्वयार्थ

कनत् स्वर्ण-आभास अपि=चमकते हुए स्वर्ण सी क्राति वाले, होकर भी, अपगत-तनु=शरीर से रहित, विचित्रात्मा अपि=अनोखे होकर भी, एक =अद्वितीय, अजन्मा अपि=जन्मरहित होने पर भी, नृपति वर सिद्धार्थ तनय=राजाओ मे श्रेष्ठ सिद्धार्थ राजा के पुत्र, श्रीमान्=श्री सम्पन्न, विगत-भव-राग=सासारिक राग से रहित, अद्भुत गति=विचित्र चरित्र वाले, ज्ञान निवह.=ज्ञान पुज, महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु में=महावीर स्वामी मेरे नेत्र पथगामी होवें।

भावार्थ

हे परम विशुद्ध परमात्मन्। आप तीर्थंकर पर्याय मे विशुद्ध स्वर्ण के समान देदीप्यमान देह वाले थे, फिर भी शारीरिक ममता मूर्च्छा से रहित थे, दर्शन-सुख वीर्यादि अनन्त गुणो-शक्तियो के कारण विचित्र आत्म स्वभाव वाले होने पर भी शुद्ध चैतन्य दृष्टि से अद्वितीय है, राजाओ मे श्रेष्ठ सिद्धार्थ राजा के पुत्र होकर भी आप अजन्मा है, अन्तरग-बहिरग श्री सम्पदा के स्वामी होकर भी सासारिक रागासक्ति से रहित है, परस्पर इस प्रकार विरोधी स्वभाव वाले होने से अद्भुत आचरण वाले है, शरीर रहित होकर भी केवल ज्ञानपुज वाले हे दिव्य पुरुष! श्री महावीर स्वामी आप मेरे दृष्टिगोचर होवे।

यदीया वाग्गंगा विविध नय कल्लोल विमला,
वृहज् ज्ञानाम्भोभिर् जगति जनतां या स्नपयति।

भावार्थ

हे कोपि विजयिन्। आपके उभयनेत्र कमल क्रोध चिह्न से रहित निश्चल है वे मानो आतरिक और बाह्य क्रोध से मनुष्यो को जो अनेक प्रकार के नुकसान और अहित होते है उनसे बचने का संसूचन कर रहे है और जिनकी मुख मुद्रा परम शान्त तथा जीवन अत्यन्त निर्मल है वे सन्मति धारक! श्रमण भगवान् महावीर मेरे दृष्टिगोचर होवे।

नमन्ना केन्द्राली-मुकुट मणि-भा जाल जटिलं,
लसत् पादाम्भोज द्वय-मिह यदीयं तनु भृताम्।
भव ज्वाला शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे ॥3॥

अन्वयार्थ

यदीयं=जिनके, **नमन नाकेन्द्राली**=नमन करते हुए देवेन्द्र समूह के, **मुकुटमणि भा**=मुकुट मणियो के काति पुञ्ज से, **जाल-जटिल**= खच खचित, **लसत्-पादाम्भोज द्वयं**=सुशोभित चरण युगल, **इह**=इस लोक मे, **तनु भृतां**=देहधारियो को, **भव ज्वाला शान्तयै**=भव अग्नि-ज्वाला को शान्त करने मे, **प्रभवति**=समर्थ है, **स्मृतं अपि**=स्मरण मात्र भी, **वा जलं**=अथवा जल को , **सः महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु में**=वे महावीर स्वामी मेरे दृष्टिगोचर होवे।

भावार्थ

हे अध्यात्म पथ दिनेश! आपके चरण सरोजो मे नमस्कार करते देवराज इन्द्र के मुकुट जड़ित मणियो को क्रांति से सुशोभित कर रहे है, अथवा इस लोक मे देहधारियो की जन्म-मरण रूप बडवानल की ज्वाला को शात करने के लिए जिनका स्मरण भी जल के समान समर्थ है वे अन्तर्यामी त्रिलोकी नाथ भगवान् महावीर स्वामी मेरे दृष्टिगोचर होवे।

यदर्चा भावेन प्रमुदित मना दर्दुर इह,
क्षणा-दासीत् स्वर्गी गुण गण समृद्ध सुख निधिः।
लभन्ते सद् भक्ता शिव सुख समाजं किमु तदा,
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे ॥4॥

अन्वयार्थ

यदर्चा भावेन=जो पूजा के भाव से, **प्रमुदित मना**=हर्षित मन हुआ, **दर्दुरः**=मेढक, **इह क्षणात्**=इस लोक मे क्षण भर मे ही, **स्वर्गी**=स्वर्ग का देव, **[illegible]-गण-समृद्ध**=गुण समूह से सम्पन्न, **सुखनिधि**=सुख का निधान,

आसीत=हुआ, सदभक्ता.=सच्चे भक्त, शिव-सुख-समाजं=कल्याण रूप अक्षय, सुख समूह को, लभते=पाते है, तदा=तब, किं=क्या ?, महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु में=वे महावीर स्वामी मेरे दृष्टिगोचर होवे।

भावार्थ

हे गुण रत्नाकर। आपके आगमन के श्रवण-स्मरण से भाव-विभोर वना मेढक क्षण मात्र मे अणिमा-महिमादि अनेक गुण रूपी ऋद्धियो से समृद्ध, सुख सम्पन्न स्वर्ग का देव हो गया तो आपकी अन्तर्हृदय से भक्ति करने वाले सच्चे भक्त मोक्ष के अक्षय निराबाध सुख को पाते है तो इसमे कोई विस्मयजनक विशेषता नही है, हे उदात्तहृदयी भगवान महावीर मेरे दृष्टिगोचर होवे।

कनत् स्वर्णाभासोऽप्यपगत तनु र्ज्ञान निवहो,
विचित्रात्मा-प्येको नृपति वर सिद्धार्थ तनय.।
अजन्माऽपि श्रीमान् विगत-भव-रागोद्-भुत गतिर्-
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे ॥5 ॥

अन्वयार्थ

कनत् स्वर्ण-आभास अपि=चमकते हुए स्वर्ण सी क्राति वाले, होकर भी, **अपगत-तनु**=शरीर से रहित, **विचित्रात्मा अपि**=अनोखे होकर भी, **एक** =अद्वितीय, **अजन्मा अपि**=जन्मरहित होने पर भी, **नृपति वर सिद्धार्थ तनय**=राजाओ मे श्रेष्ठ सिद्धार्थ राजा के पुत्र, **श्रीमान्**=श्री सम्पन्न, **विगत-भव-राग**=सासारिक राग से रहित, **अद्भुत गति**=विचित्र चरित्र वाले, **ज्ञान निवह.**=ज्ञान पुज, **महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु में**=महावीर स्वामी मेरे नेत्र पथगामी होवे।

भावार्थ

हे परम विशुद्ध परमात्मन्। आप तीर्थकर पर्याय मे विशुद्ध स्वर्ण के समान देदीप्यमान देह वाले थे, फिर भी शारीरिक ममता मूर्च्छा से रहित थे, दर्शन-सुख वीर्यादि अनन्त गुणो-शक्तियो के कारण विचित्र आत्म स्वभाव वाले होने पर भी शुद्ध चैतन्य दृष्टि से अद्वितीय है, राजाओ मे श्रेष्ठ सिद्धार्थ राजा के पुत्र होकर भी आप अजन्मा है, अन्तरग-वहिरग श्री सम्पदा के स्वामी होकर भी सासारिक रागासक्ति से रहित है, परस्पर इस प्रकार विरोधी स्वभाव वाले होने से अद्भुत आचरण वाले है, शरीर रहित होकर भी केवल ज्ञानपुज वाले हे दिव्य पुरुष। श्री महावीर स्वामी आप मेरे दृष्टिगोचर होवे।

यदीया वाग्गंगा विविध नय कल्लोल विमला,
बृहज् ज्ञानाम्भोभिर् जगति जनता या स्नपयति।

इदानी-मप्येषा बुधजन-मरालैः परिचिता।
महावीर-स्वामी नयन पथगामी भवतु मे ॥6 ॥

अन्वयार्थ

यदीया=जिनकी, **या**=यह, **विविध नय कल्लोल विमला**=अनेक नय तरगो से निर्मल, **वाग् गंगा**=वचन रूपी गगा, **बृहज्-ज्ञानाम्भोभिः**=विपुल ज्ञान जल से, **जगति जनतां**=संसार मे प्राणियो का, **स्नपयति**=अभिषेक कर सताप हरती है, **इदानी अपि**=इस समय भी, **बुधजन मरालै.**=विद्वत् जन रूपी हंसो से, **परिचिता**=पहिचाने जाते है वे, **महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे**=महावीर स्वामी मेरे दृष्टिगोचर होवे।

भावार्थ

नैगमादि नय अथवा स्यादस्तिदि स्याद्वाद सप्तभगी रूप नय तरगो से निर्मल वचन रूपी गगा अपने ज्ञान समूह से ससार के संतप्त प्राणियो को स्नान कर कर्ममल को दूर करती है। उस जिनागम मे निबद्ध वाणी का परिचय राजहंस के समान उत्तम पुरुष आज भी करते है हे विद्वत् जगत् शिरोमणि प्रभु महावीर हमारे नयन गोचर होवे।

अनिर्वारो-द्रेकस् त्रिभुवन जयी काम सुभटः
कुमारावस्थाया मपि निज बलद्यन विजित.।
स्फुरन् नित्यानंद प्रशम पद राज्याय स जिन.
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे ॥7 ॥

अन्वयार्थ

येन कुमारावस्थायां अपि=जिसने कुमार अवस्था मे भी, **स्फुरन् नित्यानंद**=भहरा रहे (विकसित) नित्य आनद वाले, **प्रशम** प्रशान्त **पद राज्याय**=शिव पद के राज्य के लिए, **निज बलात्**=अपने योग बल से, **अनिर्वार-उद्रेक.**=न हटने योग्य उद्रेक वाले, **त्रिभुवन जयी**=त्रिलोक विजेता, **काम सुभट.**=काम रूपी योद्धा को, **विजित**=जीता, **स जिन**=वे जिनेश्वर, **महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे**=श्री महावीर स्वामी हमारे दृष्टिगोचर होवे।

भावार्थ

हे दुर्जय काम विजयिन्! जिसका प्रबल उदय निवारण नही किया जा सकता और जिसने तीन लोक के जीवो को अपने अधीन कर रखा है ऐसे मोहकर्म के अजेय कामदेव रूपी वीर सुभट को भी जिसने स्फुरायमान नित्य आनन्द

रूप प्रशम पद के राज्य को पाने हेतु अपने प्रवल पराक्रम से कुमार अवस्था मे ही जीत लिया ऐसे जिनेश्वर श्री महावीर स्वामी मेरे दृष्टिगोचर होवे।

महा-मोहातंक प्रशमन पराऽऽकस्मिक भिषग्,
निरापेक्षो बन्धुर् विदित महिमा मंगल करः।
शरण्य साधूनां भव भय भृता-मुत्तम गुण,
महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे ॥8 ॥

अन्वयार्थ

महामोहातंक=भीषण मोह के आतक को, **प्रशमन**=सर्वथा शान्त करने, **पराऽऽकस्मिक**=तत्पर आकस्मिक, **भिषक्**=वैद्य, **निरापेक्ष**=निष्कारण, **बन्धु.**=परम बन्धु, **विदित महिमा**=प्रख्यात महिमा वाले, **मंगल कर.**=शुभ-हित करने वाले, **भव-भय-भृतां**=जन्म मरण के भय से भरे हुए, **साधूना शरण्य.**=सज्जनो को शरण दाता, **उत्तम गुण.**=सर्वश्रेष्ठ गुण वाले, **महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे**=महावीर स्वामी मेरे दृष्टिगत होवे।

भावार्थ

जो महामोहकर्म के आतक को शात करने के लिए अपूर्व निष्णात वैध है, ससार के चर-अचर सर्व जीवो पर निष्कारण स्नेहपूर्ण वात्सल्य दृष्टि रखने वाले है, जिनकी महिमा सर्वविदित है, जो निष्कामा भाव से सबका शुभ और कल्याण करने वाले है, ससार के दु.ख द्वन्द्वो, जन्म-मरण के चक्र से भयाकुल सज्जन-पुरुषो को शरण देने, रक्षा करने वाले है, सर्वोत्तम गुणो के स्वामी है, वे त्रिलोकीनाथ श्री महावीर स्वामी मेरे दृष्टिगोचर होवे।

महावीराष्टक स्तोत्र भक्त्या भागेन्दुना कृतम्।
य पठेच्छणु या च्वापि स याति परमा गतिम् ॥9 ॥

अन्वयार्थ

भागेन्दुना भक्त्या=भाग चन्द्र द्वारा भक्ति से, **कृतं**=रचे गये, **महावीराष्टकं स्तोत्रं**=पद्यमय महावीर अष्टक स्तोत्र को, **य पठेत्**=जो पढेगा, **च शृणुयात**=और सुनेगा, **स परमा**=वह श्रेष्ठ, **गतिं**=गति को, **याति**=जाता है।

भावार्थ

इस महावीर अष्टक स्तोत्र की रचना भक्ति से प्रेरित होकर भागचन्द्र ने की है। जो भक्ति रस मे निगम्न होकर पढता है और जो सुनता है वह भी श्रेष्ठ गति को प्राप्त होता है।

□

रत्नाकर पंचविंशतिका

श्रेयः ! श्रियां मंगल केलि सद्म,
नरेन्द्र देवेन्द्र नताङ्घ्रि पद्मः !
सर्वज्ञ ! सर्वातिशय ! प्रधान,
चिरं जय ज्ञान कला निधान ॥1 ॥

अन्वयार्थ

श्रेयः=हे श्रेयस्कर !, **श्रियॉ**=लक्ष्मी के, **मंगल**=मगल मय, **केलि सद्म**=क्रीडा के सदन, **नरेन्द्र देवेन्द्र**=नरेन्द्रो और देवेन्द्रो से, **नतांघ्रि पद्म**=नमस्कृत चरण कमल वाले, **सर्वज्ञ**=सब जानने वाले, **सर्वातिशय प्रधान**=सर्व अतिशयो से प्रधान, **ज्ञान कला निधान**=ज्ञान रूपी कलाओ के भण्डार, **चिरंजय**=चिरकाल तक जयवत रहे ।

भावार्थ

हे श्री के अनुपम धाम ! आप कल्याणकारी लक्ष्मी के रमण-क्रीडा के मगलमय स्थान है, आपके चरणो मे पृथ्वी पति और स्वर्गाधिपति आकर नमस्कार करते है आप सर्व वस्तुओ के सर्वकालिक अवस्थाओ को जानने वाले है सर्वोत्तम सर्व अतिशयो के धारक है ज्ञान रूपी कलाओ के अक्षय भण्डार है, हे भगवन् ! आप की सदा काल जय हो ।

जगत् त्रयाऽऽधार ! कृपावतार,
दुर्वार संसार विकार वैद्य !
श्री वीतराग ! त्वयि मुग्ध भावात्
विज्ञ ! प्रभो ! विज्ञपयामि किंचित ॥2 ॥

अन्वयार्थ

जगत त्रयाधार=हे तीन जगत के आधार !, **कृपावतार**=हे दया के अवतार !, **दुर्वार संसार**=अत्यन्त कठिनाई से हटाये जाने वाले ससार रूपी, **विकार वैद्य**=विकारो के चिकित्सक, **श्री वीतराग**=श्री वीतराग, **विज्ञ प्रभो !**=हे सर्वज्ञ प्रभो !, **त्वयि**=आपके सम्मुख, **मुग्ध भावात्**=निश्छल भाव से, **किंचित विज्ञ पयामि**=कुछ निवेदन करता हूँ ।

भावार्थ

हे त्रिलोक स्तम्भ ! आप तीनो लोक के आधार है, अकारण अनुग्रह दृष्टि रखने वाले है, अत्यन्त दुष्कर संसार रूपी विकारो के सफल चिकित्सक है ।

आप राग-द्वेष से रहित सब कुछ जानने वाले सर्वज्ञ हैं। प्रभो! मैं आपके सामने निश्छल भाव से कुछ आत्म निवेदन कर रहा हूं।

किं बाल लीला कलितो न बाल
पित्रो पुरो जल्पति निर्विकल्प.।
तथा यथार्थ कथयामि नाथ!
निजाशयं सानुशयस् तवाऽग्रे ॥3 ॥

अन्वयार्थ

बाल लीला कलित:=बाल भाव की लीला से युक्त, बाल=बालक, पित्रो पुर=माता-पिता के आगे, निर्विकल्प.=विकल्प रहित, किं न जल्पति=क्या नही कहता, नाथ=हे नाथ, सानुशय=पश्चात्तापपूर्वक, यथार्थ निजाशयं=वास्तविक अपने अभिप्राय को, तव अग्रे=आपके आगे, कथयामि=कहता हूं।

भावार्थ

हे अन्तर्यामी विभो! जिस प्रकार बालक अपने माता-पिता के सामने अपनी बाल सुलभ चेष्टाओ, क्रिया-कलापो बातो को दुराव-लुकाव-छिपाव के बिना सरल भाव से सत्य सत्य कहता है। उसी प्रकार हे क्षमासिन्धु! मैं आपके सामने पश्चात्तापपूर्वक जीवन की घटनाओ और अपने दुष्कृत्यो को निष्कपट हृदय से सत्य तथ्य रूप मे निरावरण रखता हूं, सुनिए।

दत्तं न दानं परि शीलितं च
न शालि शीलं न तपोऽभि तप्तम्।
शुभो न भावोऽप्य भवद् भवेऽस्मिन्
विभो! मया भ्रान्त महो मुधैव ॥4 ॥

अन्वयार्थ

विभो=हे प्रभो!, मया=मैंने, न दानं दत्तं=न दान दिया, न शालि शील=न उत्तम शील, परिशीलितं=परिपालना की, न तप. अभितप्त=न तप तपा, न शुभ भाव अपि=न शुभ भाव भी, अभवत्=हुआ, अस्मिन् भवे=इस भव मे, अहो=आश्चर्य, मुधा एव=व्यर्थ ही, भ्रान्तं=घूमता रहा।

भावार्थ

हे आदर्श शिरोमणि! धन वैभव होने पर भी मैंने कभी न दान दिया, न अहिसा दी, शील को जीवन मे धारण किया, दैहिक ममता मूर्च्छा होने से न तपश्चर्या ही की और तो क्या शुभ सद्भावना भी नही रख पाया। हे प्रभो! मैंने यह जन्म भी व्यर्थ ही गवॉ दिया।

दग्धोऽग्निना क्रोध मयेन दष्टो
दुष्टेन लोभाऽऽख्य महोरगेण।
ग्रस्तोऽभिमानाऽजगरेण माया
जालेन बद्धोऽस्मि कथं भजे त्वाम् ॥5 ॥

अन्वयार्थ

क्रोधमयेन=क्रोध रूपी इस, **अग्निना**=अग्नि से, **दग्धः**=जला, **दुष्टेन**=दुष्ट, **लोभाख्य**=लोभ नामक, **महा उरगेण**=महा सर्प से, **दष्ट**=डसा गया, **अभिमान. अजगरेण**=अभिमान रूपी अजगर से, **ग्रस्त.**=निगला गया, **माया जालेन**=माया रूपी जाल से, **बद्ध.**=बध गया, **अस्मि**=हूँ, **कथं त्वां भजे**=कैसे आपको भजूँ।

भावार्थ

हे परम सुहृद स्नेही! क्रोध रूपी अग्नि ने मुझको जलाया, लोभ नामक कालन्धर सर्प ने मुझे डसा, मान रूपी अजगर ने मुझे निगला और माया के चक्कर मे बुरी तरह फसा हुआ हूँ। कैसे मै आपकी सेवा सुश्रूषा उपासना करूँ?

कृतं मयाऽमुत्र हितं न चेह
लोकेऽपि लोकेश! सुखं न मेऽभूत।
अस्मादृशां केवल मेव जन्म,
जिनेश! जज्ञे भव पूरणाय ॥6 ॥

अन्वयार्थ

लोकेश=हे लोक स्वामिन्, **मया**=मैने, **अमुत्र इह च**=परलोक और इस लोक मे, **हितं न कृतं**=हित नही किया, **लोकेऽपि**=ससार मे भी, **मे सुखं**=मुझे सुख, **न अभूत**=नही हुआ, **जिनेश**=हे जिनेश्वर, **अस्मादृशां**=हम जैसो का, **जन्म केवलं**=जन्म मात्र, **भव पूरणाय एव**=भव पूर्ति के लिए ही, **जज्ञे**=हुआ।

भावार्थ

हे कृत कृत्य भगवन्! मैने अपना हित न पूर्व जन्म मे किया और न इस जन्म मे कुछ कर पाया हूँ, न ही इस संसार मे सुखी रह सका, हे जिनेश्वर देव। इस देव दुर्लभ नर जन्म का मिलना केवल भव पूर्ति हेतु हुआ है, ऐसा मै मानता हूँ।

मन्ये मनो यन्न मनोज्ञ वृत!
त्व दास्य पीयूष मयूख लाभात्।
द्रुत महाऽऽनन्द रसं कठोर-
मस्मादृशां देव! तदश्मतोऽपि ॥7 ॥

अन्वयार्थ

मनोज्ञ वृत=हे सुन्दर चारित्रधर !, यद्मन =जो मन, त्वत् आस्य=आपके मुख के, पीयूष मयूख लाभात्=अमृत मय किरणो के लाभ से, महानन्द रस=महान आनन्द रस को, न द्रुतं=पिघला नही, देव! मन्ये=हे देव! मानता हूँ, अस्मादृशां=हमारे जैसो का, तत्=वह हृदय, अश्मत अपि=पत्थर से भी, कठोरं=कठोर है।

भावार्थ

हे दिव्य चारित्र धर ! यदि मेरा मन महानन्द रस से अप्लावित करने वाली आपके दिव्य देशना रूपी अमृतमय किरणो से लाभान्वित नहीं हुआ तो, हे देव ! मानता हूँ कि मुझ जैसा का हृदय पत्थर से भी अत्यधिक कठोर है।

त्वत्तः सु दुष्प्रापय मिदं मयाऽऽप्तं
रत्न त्रयं भूरि भव भ्रमेण।
प्रमाद निद्रा वशतो गतं तत्
कस्याऽग्रतो नायक ! पूत्करोमि ? ॥8 ॥

अन्वयार्थ

नायक=हे स्वामिन् !, मया=मैंने, भूरि=वहुत, भव भ्रमेण=भव भ्रमण से, सुदुष्प्राप्यं=अति कठिनाई से पाने योग्य, इदं=यह, रत्न त्रय=रत्न त्रय, त्वत्त =आपसे, आप्तं=प्राप्त किया, तत्=वह, प्रमाद निद्रावशत =प्रमाद और निद्राधीन होकर, गतं=चला गया, कस्य अग्रत =किसके आगे, पूत्करोमि=पुकार करूँ।

भावार्थ

हे परमोपकारी प्रभो ! चार गति चौरासी लाख जीव योनि रूप अपार ससार सागर मे परिभ्रमण करते हुए आपके प्रसाद से अत्यन्त दुर्लभ श्रेष्ट सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र रूप रत्न त्रय की प्राप्ति हुई। परन्तु हे भगवन् ! उन अमूल्य दुर्लभ रत्नो को प्रमाद और निद्राधीन होकर खो दिया। अव मैं भगवन् किसके सामने यह पुकार करूँ ?

वैराग्य रग पर वञ्चनाय
धर्मोपदेशो जन रंजनाय।
वादाय विद्याऽध्ययनं च मेऽभूत
कियद् व्रुवे हास्य करं स्वमीश ॥9 ॥

अन्वयार्थ

ईश=हे जगदीश्वर, मे वैराग्य रंगः=मेरा वैराग्य का रग, पर वंचनाय=दूसरो को ठगने के लिए, धर्मोपदेश.=धर्म का उपदेश, जन रंजनाय=लोगो को रीझाने के लिए, च विद्याध्ययनं वादाय=और विद्या का अध्ययन वाद-विवाद के लिए, अभूत=हुआ, स्वं=अपने, हास्य करं=हसी करने वाले, कियत् ब्रुवे=कितने कार्यो को कहूँ।

भावार्थ

हे जगत पते ! मैने आत्मोद्धार करने वाले वैराग्य भाव का अवलम्बन दूसरो को ठगने के लिए लिया, धर्म का उपदेश लोगो को खुश प्रसन्न वशीभूत करने के लिए दिया और विद्या अध्ययन भी वाद-विवाद मे प्रतिवादी को हराने के लिए किया, हे महामहिम ! इस प्रकार मैं अपनी हास्यास्पद किन-किन क्रिया-कलापो को कहूँ।

परापवादेन मुखं सदोषं
नेत्रं परस्त्री जन वीक्षणेन।
चेतः परापाय विचिन्तनेन
कृतं भविष्यामि कथं विभोऽहम् ॥10 ॥

अन्वयार्थ

मुखं परापवादेन=मुख दूसरो की निन्दा करने से, नेत्रं परस्त्री जन वीक्षणेन=ऑखे पराई स्त्री जनो को देखने से, चेत परापाय=चित्त दूसरो का बुरा, विचिन्तनेन=विचारने से, सदोषं=दोष युक्त हुआ, अहं=मै, विभो=हे प्रभो !, कथं कृतं भविष्यामि=कैसे कृत कृत्य होऊँगा ?

भावार्थ

हे दोष विनिर्मुक्त प्रभो ! मैने दूसरो को अपने गौरव, इज्जत सम्मान मे वाधक जान अनावश्यक निष्कारण वदनामी करके चर्चित वनाया, पर स्त्रियो को माता भगिनी वेटी की दृष्टि से न देख मैंने उनको विकारी कुत्सित भावना से देखा और दूसरो का अहित अनर्थ करने का चिन्तन करते रहने से मेरा चित्त भी मलिन दोष युक्त वना हुआ है हे अधमोद्धारक प्रभो ! अव मै कैसे कृतार्थ होऊँगा ?

विडम्वितं यत् स्मर घस्मरार्ति
दशा वशात् स्वं विपयान्धलेन।

प्रकाशितं तद् भवतो ह्रियैव
सर्वज्ञ सर्व स्वय मेव वेत्सि ॥11॥

अन्वयार्थ

विषयान्धलेन=विषयो मे आसक्त होकर, **स्मरघ**=काम का स्मरण करके, **स्मर. अर्ति**=कामदेव से पीडित, **दशावशात्**=दशा के कारण, **यत् स्वं**=जो अपनी, **विडिम्बितं**=विडम्बना की, **तत ह्रियैव**=उसे लज्जित होकर ही, **प्रकाशितं**=प्रकट किया, **सर्वज्ञ सर्व**=हे सर्वज्ञ प्रभो!, सव कुछ, **स्वयमेव वेत्सि**=स्वय ही जानते हो।

भावार्थ

हे काम विजयिन्! विषयो मे मदोन्मत्त बना विषयो का स्मरण चिन्तन कर उनसे जो क्लेश सताप पाया, अपनी दयनीय-दुर्दशा अवस्था वश की, उसे आपके सामने लज्जानुभव करते हुए रखा, हे सर्वज्ञ प्रभो! आप सब कुछ अपने आप ही जानते हो।

ध्वस्तोऽन्य मन्त्रैः परमेष्ठि मन्त्र
कुशास्त्र वाक्यैर् निहताऽऽगमोक्तिः।
कर्तु वृथा कर्म कुदेव संगा
दवांछि हि नाथ! मति भ्रमो मे ॥12॥

अन्वयार्थ

अन्य मन्त्रै.=दूसरे मन्त्रो से, **परमेष्ठि मन्त्र.**=महामत्र नवकार, **ध्वस्त.**=विनष्ट किया, **कुशास्त्र वाक्यै**=कुशास्त्रो के वाक्यो से, **आगमोक्ति**=जिनागम की उक्तियॉ, **निहता**=विनष्ट की, **कुदेव संगात्**=कुदेव की सगति से, **वृथाकर्म**=अनावश्यक कार्य, **कर्तु**=करने के लिए, **अवांछि**=चेष्टाएँ की, **नाथ**=हे नाथ, मे ही **मतिः भ्रम**=मेरा अवश्य ही मति भ्रम हुआ।

भावार्थ

हे देवाधिदेव जिनवर! अनादि सिद्ध नमस्कार महामत्र को पाकर भी मैंने इतर मत्रो को श्रेष्ठ एव प्रभावी बतलाया। इस प्रकार महामत्र का अवमूल्यन अनादर उपेक्षा की एव अन्य शांति, सम्मोहन, उच्चाटन आदि मत्रो का प्रभाव साक्षात् दिखा, नमस्कार मंत्र के प्रति श्रद्धा रखने वालो को विचलित कर आकर्षण बढाया। अन्य इतर धर्मशास्त्रो की वाक्यावली सूत्र, श्लोक, गाथा आदि के द्वारा जिनागम के कथन को असत् ठहरा कर उनके महत्त्व को घटया, कुदेव के ससर्ग के कारण जो जो कार्य नहीं करने चाहिए थे, उन उन कार्यो को सहर्ष करने तत्पर रहा, किया। हे नाथ! यह मेरा मति भ्रम नही था तो और क्या था?

नाऽऽत्मा न पुण्यं न भवो न पापं
मया विटानां कटुगीर पीयम्।
आधारि कर्णे त्वयि केवलाऽर्के
परिस्फुटे सत्यपि देव! धिग् माम्॥17॥

अन्वयार्थ

त्वयि केवलार्के=आपके केवल ज्ञान रूप सूर्य के, **परिस्फुटे सति अपि**=प्रकाशमान होने पर भी, **मया**=मैने, **न आत्मा**=न आत्मा है, **न पुण्यं**=न पुण्य है, **न भवः**=न संसार है, **न पापं**=न पाप है, **इयं विटानां**=ऐसी नास्तिको की, **कटुगीरः**=दुष्ट मिथ्या वाणी, **अपि कर्णे**=भी कानो मे, **आधारि**=धारण की, **माम् धिक्**=मुझे धिक्कार है।

भावार्थ

हे सद्धर्म दिवाकर! जीव-अजीव पुण्य-पाप, लोक-परलोक आदि सब अनादि शाश्वत और स्वयंसिद्ध है। ऐसी आपकी दिव्य देशना होने पर भी इनके विरुद्ध धूर्तो की असत् वाणी को ध्यान से मात्र सुना ही नही, सत्य मान स्वीकार की। यह सब आप जैसे साक्षात् दिव्य दिनकर के विद्यमानता मे हुआ। हे भगवन्! मुझे धिक्कार है।

न देव पूजा न च पात्र पूजा
न श्राद्ध धर्मश्च न साधु धर्मः।
लब्ध्वाऽपि मानुष्य-मिदं समस्तं
कृतं मयाऽरण्य विलाप तुल्यम्॥18॥

अन्वयार्थ

न देव पूजा=न देव की उपासना की, **न पात्र पूजा**=न सुपात्र की सेवा भक्ति की, **न श्राद्ध धर्मः**=न श्रावक धर्म का पालन किया, **न साधु धर्मः**=न साधुत्व धर्म की आराधना की, **इदं मानुष्यं**=यह नर जन्म, **लब्ध्वा अपि**=पाकर भी, **मया समस्तं**=मेरे द्वारा सब कार्य, **अरण्य विलाप तुल्यं कृतं**=अरण्य रोदन सदृश किये गए है।

भावार्थ

वीतराग

हे देव वन्दनीय देवाधिदेव! मानव
देवो की सेवा-उपासना की, न सुपात्र
सज्जनो की आवभगत की, न मैंने श्राव

धर्म की आराधना की। हे नाथ ! मैने वन मे क्रन्दन करने वाले पुरुष की भॉति निरर्थक क्रिया-कलापो मे अपने जीवन के अमूल्य क्षणो और जीवनी शक्ति को व्यर्थ गवॉ दी।

चक्रे मयाऽसत्स्वपि कामधेनु
कल्प द्रु चिन्तामणिषु स्पृहार्ति.।
न जैन धर्मै स्फुट शर्म देऽपि
जिनेश! मे पश्य विमूढ़ भावम्॥19॥

अन्वयार्थ

मया=मैने, कामधेनु कल्पद्रु चिन्तामणिषु=कामधेनु, कल्पवृक्ष और चिन्तामणि के, असत्सु अपि=असत् होने पर भी, स्पृहार्तिः=इच्छा की, स्फुट शर्मदेऽपि=प्रकट सुखकर होने पर भी, न चक्रे=न की इच्छा, जैन धर्मे=जिन धर्म की, जिनेश !=हे जिनेश्वर, मे विमूढ भावं पश्य=मेरे मूर्खत्व को देखो ?

भावार्थ

वर्तमान काल मे अविद्यमान और नाशवान् जो कामधेनु, कल्पवृक्ष और चिन्तामणि रत्न असत् है, उनको पाने की इच्छा से दुखो को सहन किया लेकिन प्रत्यक्ष सुखकर जैन धर्म था, उसके बारे मे जानने तक की इच्छा न की। हे जिनेन्द्र ! आप मेरी मूखर्तता को तो देखे ?

सद् भोग लीला न च रोग कीला
धनागमो नो निधनाग-मश्च।
दारा न कारा नरकस्य चित्ते
व्यचिन्ति नित्य मय काऽधमेन॥20॥

अन्वयार्थ

मयका=मुझ, अधमेन=दुष्ट पापात्मा ने, नित्यं चित्ते=सदा चित्त मे, सद् भोग लीला=विद्यमान काम-क्रीडा का विचार किया, न च रोग कीला=और रोग के घर है यह नही, धनागम =धन उपार्जन का सोचा, न च निधनागम =और मृत्यु के आने का नही, दारा =स्त्रियो के सहवास आदि का चिन्तन किया, न नरकस्य कारा =नरक की कारागृह है ऐसा, न व्यचिन्ति=विचार नही किया।

भावार्थ

हे निस्पृह प्रभो ! मैने इन्द्रिय सम्बन्धी काम-भोग का ही चिन्तन किया मगर ये भोग साक्षात् रोग-सदन है, इसका विचार कभी नही किया, धन के आगमन

विमुच्य दृग् लक्ष्य गतं भवन्तं
ध्याता मया मूढ धिया हृदयन्तः ।
कटाक्ष वक्षोज गम्भीर नाभि
कटी-तटीयाः सुदृशां विलासाः ॥13 ॥

अन्वयार्थ

दृग्लक्ष्य गतं=दृष्टिगोचर न हुए, **भवन्तं विमुच्य**=आपको छोडकर, **मूढ धिया मया**=मूर्ख बुद्धि मैने, **हृदयन्तः**=हृदय मे, **सुदृशां**=सुन्दर दिखने वाली मृगनयनी स्त्रियो के, **कटाक्ष**=नेत्रो के कटाक्षो, **वक्षोज**=स्तनो, **गम्भीर नाभी**=गहरी नाभि, **कटी-तटीया**=पतली कमर को, **विलासा.**=उनके हाव-भाव पूर्ण विलासो को, **ध्याता**=ध्याया ।

भावार्थ

हे स्वरूप सुन्दर प्रभो ! मैने आप जैसे सुरूपवान् दिव्य तेजोमय सुदेव को देखकर भी दिखने मे सुन्दर मनोहर आकर्षक स्त्रियो के तिरछे नेत्र कटाक्षो कुम्भ सदृश स्तनो, पतली कमर वगैरह को देख तथा मधुर सलाप इत्यादि का नित चिन्तन कर कामदेव की ही आराधना की । हे काम विजयिन् ! मुझ वासना कीट को धिक्कार है ।

लोलेक्षणा वक्त्र निरीक्षणेन
यो मानसे राग लवो विलग्न. ।
न शुद्ध सिद्धान्त पयोधि मध्ये
धौतोऽप्य गात् तारक ! कारणं किम् ॥14 ॥

अन्वयार्थ

मानसे=मानस पर, **लोलेक्षणा**=चचल नेत्रो वाली स्त्रियो के, **वक्त्र**=मुख, **निरीक्षणेन**=देखने से, **यः राग लव**=जो राग भाव, **विलग्न**=सलग्न हो गया, **शुद्ध सिद्धान्त**=शुद्ध सिद्धान्त रूपी, **पयोधि मध्ये**=सागर मे, **धौत अपि**=धोया भी, **न अगात्**=नही गया, **तारक ! कारण किं**=हे तिरण तारणहार ! क्या कारण है ?

भावार्थ

हे निर्विकारी प्रभो ! चचल मृगनयनी स्त्रियो के मुख दर्शन से मानस तंत्र पर जो रागात्मक आकर्षण उनके प्रति हो गया है, उसे सिद्धान्त रूपी सागर मे निमग्न होकर धोने का प्रयत्न किया, मगर वह धुला नही । हे तरण तारण प्रभो ! क्या कारण है ?

अंगं न चगं न गणो गुणानां
न निर्मल. कोऽपि कला विलास ।
स्फुरत् प्रभा न प्रभुता च काऽपि
तथाऽप्य हंकार कदर्थितोऽहम् ।।15 ।।

अन्वयार्थ

अंगं न चंगं=शरीर स्वस्थ नही है, गुणानां=गुणो का, गणो न=समूह नही है, कः अपि निर्मल.=कोई भी निर्मल, कला विलास न च=और न मनो-विनोदकारी कला है, का अपि स्फुरत् प्रभा=कोई दमकने वाली काति भी, च=और, न प्रभुता=न ही शासन है, स्वामित्व है, तथा अपि अहंकार=फिर भी अहकार, अहं कदर्थित.=मै भरा फूल रहा हूँ।

भावार्थ

हे परमात्मन्! मै न शरीर से सुन्दर, स्वस्थ एव वलिष्ठ हूँ न मुझ मे कोई गुण ही है, न मनोरजन करने वाला विज्ञान ही है और न कोई चमकने वाली प्रतिभा ही है तथा न ही किसी प्रकार का स्वामित्व है फिर भी अहकार से मै गर्वित हो रहा हूँ।

आयुर्गल त्याशु न पाप बुद्धि
गतं वयो नो विषयाऽभिलाष ।
यत्नश्च भैषज्य विधौ न धर्मे
स्वामिन्! महामोह विडम्बना मे ।।16 ।।

अन्वयार्थ

आयु.=आयु, आशु गलति=शीघ्रता से गल रही है, न पाप बुद्धि=पाप मति नही, वय गतं=उम्र बीत गई, नो विषयाभिलाष=विषय की कामना नही, भैषज्य विधौ=दवा करने मे, यत्न=यत्न किया, न धर्मे=धर्माचरण मे नही, स्वामिन्=हे मालिक, महामोह=महान् मोह की, विडम्बना=विडम्बना है, मे=मेरी ।

भावार्थ

हे मोहजयी! आयु शीघ्रता से घटती जा रही है पर पाप-वासना रूप सस्कार कम नही हो रहे है, उम्र बीत गई बुढापा आ गया। मगर काम वासना विषयेच्छा कम नही हुई, स्वस्थ वलिष्ठ युवावस्था बनाए रखने के लिए विविध औषधादि का सेवन करने प्रयत्नशील रहता हूँ, परन्तु धर्म का आचरण जीवन को निर्मल स्वस्थ सतुलित बनाने के लिए नही करता हूँ, हे स्वामिन्! यह मेरी प्रबल मोह कर्म की जबरदस्त स्थिति है।

नाऽऽत्मा न पुण्यं न भवो न पापं
मया विटानां कटुगीर पीयम्।
आधारि कर्णे त्वयि केवलाऽर्के
परिस्फुटे सत्यपि देव! धिग् माम्॥17॥

अन्वयार्थ

त्वयि केवलार्के=आपके केवल ज्ञान रूप सूर्य के, **परिस्फुटे सति अपि**=प्रकाशमान होने पर भी, **मया**=मैंने, **न आत्मा**=न आत्मा है, **न पुण्यं**=न पुण्य है, **न भवः**=न ससार है, **न पापं**=न पाप है, **इयं विटानां**=ऐसी नास्तिको की, **कटुगीरः**=दुष्ट मिथ्या वाणी, **अपि कर्णे**=भी कानो मे, **आधारि**=धारण की, **माम् धिक्**=मुझे धिक्कार है।

भावार्थ

हे सद्धर्म दिवाकर! जीव-अजीव पुण्य-पाप, लोक-परलोक आदि सव अनादि शाश्वत और स्वयंसिद्ध है। ऐसी आपकी दिव्य देशना होने पर भी इनके विरुद्ध धूर्तो की असत् वाणी को ध्यान से मात्र सुना ही नही, सत्य मान स्वीकार की। यह सब आप जैसे साक्षात् दिव्य दिनकर के विद्यमानता मे हुआ। हे भगवन्! मुझे धिक्कार है।

न देव पूजा न च पात्र पूजा
न श्राद्ध धर्मश्च न साधु धर्मः।
लब्ध्वाऽपि मानुष्य-मिदं समस्तं
कृतं मयाऽरण्य विलाप तुल्यम्॥18॥

अन्वयार्थ

न देव पूजा=न देव की उपासना की, **न पात्र पूजा**=न सुपात्र की सेवा भक्ति की, **न श्राद्ध धर्मः**=न श्रावक धर्म का पालन किया, **न साधु धर्म**=न साधुत्व धर्म की आराधना की, **इदं मानुष्यं**=यह नर जन्म, **लब्ध्वा अपि**=पाकर भी, **मया समस्तं**=मेरे द्वारा सव कार्य, **अरण्य विलाप तुल्यं कृतं**=अरण्य रोदन सदृश किये गए है।

भावार्थ

हे देव वन्दनीय देवाधिदेव! मानव जन्म को पाकर भी न कभी मैंने वीतराग देवो की सेवा-उपासना की, न सुपात्र सर्वस्व त्यागी महापुरुषो एव साधर्मि सज्जनो की आवभगत की, न मैंने श्रावक धर्म की पालना की और न ही साधु

धर्म की आराधना की। हे नाथ! मैंने वन मे क्रन्दन करने वाले पुरुष की भॉति निरर्थक क्रिया-कलापो मे अपने जीवन के अमूल्य क्षणो और जीवनी शक्ति को व्यर्थ गवॉ दी।

चक्रे मयाऽसत्स्वपि कामधेनु
कल्प द्रु चिन्तामणिषु स्पृहार्ति.।
न जैन धर्मै स्फुट शर्म देऽपि
जिनेश! मे पश्य विमूढ़ भावम्॥19॥

अन्वयार्थ

मया=मैने, कामधेनु कल्पद्रु चिन्तामणिषु=कामधेनु, कल्पवृक्ष और चिन्तामणि के, असत्सु अपि=असत् होने पर भी, स्पृहार्ति =इच्छा की, स्फुट शर्मदेऽपि=प्रकट सुखकर होने पर भी, न चक्रे=न की इच्छा, जैन धर्मे=जिन धर्म की, जिनेश!=हे जिनेश्वर, मे विमूढ भावं पश्य=मेरे मूर्खत्व को देखो?

भावार्थ

वर्तमान काल मे अविद्यमान और नाशवान् जो कामधेनु, कल्पवृक्ष और चिन्तामणि रत्न असत् है, उनको पाने की इच्छा से दुखो को सहन किया लेकिन प्रत्यक्ष सुखकर जैन धर्म था, उसके बारे मे जानने तक की इच्छा न की। हे जिनेन्द्र! आप मेरी मूखर्तता को तो देखे?

सद् भोग लीला न च रोग कीला
धनागमो नो निधनाग-मश्च।
दारा न कारा नरकस्य चित्ते
व्यचिन्ति नित्य मय काऽधमेन॥20॥

अन्वयार्थ

मयका=मुझ, अधमेन=दुष्ट पापात्मा ने, नित्यं चित्ते=सदा चित्त मे, सद् भोग लीला=विद्यमान काम-क्रीडा का विचार किया, न च रोग कीला=और रोग के घर है यह नही, धनागम =धन उपार्जन का सोचा, न च निधनागम =और मृत्यु के आने का नही, दारा.=स्त्रियो के सहवास आदि का चिन्तन किया, न नरकस्य कारा =नरक की कारागृह है ऐसा, न व्यचिन्ति=विचार नही किया।

भावार्थ

हे निस्पृह प्रभो! मैंने इन्द्रिय सम्बन्धी काम-भोग का ही चिन्तन किया मगर ये भोग साक्षात् रोग-सदन है, इसका विचार कभी नही किया, धन के आगमन

के स्रोत नित्य नये ढूँढने की मानसिकता रही परन्तु मृत्यु के क्षण-क्षण निकट आने को भूल गया, मृगनयनी चचल अप्सराओ सी नव यौवनाओ के हाव-भाव चेष्टाओ, रग, रूप का तो विचार किया किन्तु शक्ति हरण, संक्लेश सताप तथा नरक रूप कारागृह मे पूरने वाली है। इसका किचित भी हे अधमोद्धारक प्रभो विचार नही किया।

स्थितं न साधो र्हृदि साधु वृत्तात
परोप-कारान्न यशोऽर्जितं च।
कृतं न तीर्थोद्ध-रणादि कृत्यं
मया मुधा हारित मेव जन्म ॥21 ॥

अन्वयार्थ

साधोः हृदि=साधु महात्माओ के हृदय मे, **साधु वृत्तात्**=श्रेष्ठ आचरण करके, **न स्थितं**=स्थान नही बनाया, **परोपकारात्**=परोपकार करके, **यश. न अर्जितं**=यश नही कमाया, **च**=और, **तीर्थः उद्धरणादि**=तीर्थ की सार सम्भाल विकास रूप, **न कृत्यं कृतं**=कार्य नही किया, **मया जन्म मुधा एव**=मैने जन्म व्यर्थ ही, **हारितं**=हार दिया।

भावार्थ

हे तीर्थपते! मैने सद्व्यवहार करके सज्जन पुरुषो के हृदय को नहीं जीता, अर्थात् उनका प्रिय नहीं वना, दीन असहाय अनाथ को सहारा देकर उठाया और विपदाग्रस्त के अटके कार्यो को निकालने आदि दूसरो की भलाई करके यश भी संचित नही कया, चतुर्विध तीर्थ संघ की सेवा सुश्रुषा यथा योग्य यथा स्थान करने रूप श्रेष्ठ प्रवृत्ति करके पुण्य का वध नहीं किया। हे यशस्वी भगवन्! हा! हा! मैंने यह जन्म यो ही खो दिया।

वैराग्य रंगो न गुरूदितेषु
न दुर्जनानां वचनेषु शांति.।
नाऽध्यात्म लेशो मम कोऽपि देव
तार्य. कथंकार मयं भवाब्धि ॥22 ॥

अन्वयार्थ

गुरु उदितेषु=गुरु जनो के कहने पर, न वैराग्य रंग=विरक्ति का भाव नही जागा, दुर्जनानां वचनेषु=दुर्जनो के वचनो से, न शांति=न शांति मिली, मम कोऽपि=मेरे अन्दर भी कही, न अध्यात्म लेश=अध्यात्म लेशमात्र नही है,

देव=हे देव !, अयं भवाब्धि=यह भव सागर, कथंकार तार्य.=किस तरह से पार होऊँगा ?

भावार्थ

सद्गुरु भगवन्तो के सदुपदेश देने पर भी ससार के राग-रग की आसक्ति नही घटी, दुर्जनो के अप्रिय वचनो को सुन कर शात नही रह सका, वीतराग भाव मे आने के लिए आत्म सामायिक रूप समता का स्वरूप, मुझ मे लेशमात्र भी नही है तो हे अध्यात्म योगीश्वर ! यह भव सागर मैं कैसे तैर सकूगा ?

पूर्वे भवेऽकारि मया न पुण्य
मागामि जन्मन्यपि ना करिष्ये।
यदी दृशोऽहं मम तेन नष्टा
भूतोद् भवद् भावि भव त्रयीश ! ॥23 ॥

अन्वयार्थ

मया पूर्वे भवे=मैंने पहले जन्म मे, पुण्य न अकारि=पुण्य नही किया, आगामि जन्मनि अपि=अगले जन्म मे भी, नो करिष्ये=नही करूँगा, यदि=अगर, ईदृश अहं=ऐसा मै हूँ, ईश=हे ईश्वर, तेन मम=उससे मेरा, भूतोद भवद भावि=भूत वर्तमान और भविष्य, भव त्रय =जन्म तीनो, नष्टा=नष्ट हो गए।

भावार्थ

हे परमेश्वर ! मैंने पूर्व जन्म मे पुण्य का सचय नही किया और वर्तमान मे मेरी जो प्रवृत्ति है उसके अनुसार अगले जनम मे भी पुण्य का उपार्जन नहीं कर पाऊँगा। वर्तमान जन्म नानाविध सकल्प विकल्पो मे वीत रहा है। हे जगतपति ! इस प्रकार मेरे तीनो भव ही नष्ट हो गए।

किं वा मुधाऽहं वहुधा सुधा भुक्
पूज्य ! त्वदग्रे चरितं स्वकीयम्
जल्पामि यस्मात् त्रिजगत् स्वरूप
निरूपक-स्त्वं कियदेत दत्र ? ॥24 ॥

अन्वयार्थ

सुधा भुक् पूज्य =हे देवो से पूज्य !, किं वा अहं=अथवा क्या मैं, वहुधा मुधा त्वदग्रे=नानाविध व्यर्थ ही आपके आगे, स्वकीयं चरितं जल्पामि=अपना चरित्र कहूँ, यस्मात् त्वं=क्योकि आप तो, त्रिजगत् स्वरूप=तीन जगत के स्वरूप

को, **निरूपक:**=कहने वाले हो, **अत्र एतत् कियत्**=इस विषय मे यह कथन कितना है।

भावार्थ

हे देवेन्द्र पूज्य जिनेन्द्र! मै अपना चरित्र आपके आगे कितना कहूँ क्योकि आप सम्पूर्ण जगत के स्वरूप की त्रिकाल अवस्था के ज्ञात है, अत मेरे सम्पूर्ण चरित्र को जानते ही है। इस कारण से इस विषय मे कहना ज्यादा व्यर्थ है।

दीनोद्धार धुरन्धरस्त्वद परो, नास्ते मदन्य. कृपा-
पात्रं नाऽत्र जने जिनेश्वर! तथा प्येतां न याचे श्रियम्।
किं त्वर्हन् निदमेव केवल महो सद्बोधि रत्नं शिवं
श्री रत्नाकर मंगलैक निलय! श्रेयस्कर प्रार्थये ॥25॥

अन्वयार्थ

जिनेश्वर !=हे जिनेश्वर, **अत्र**=यहाँ, **जने**=ससार मे, **त्वद पर.**=आपके अतिरिक्त, **दीनोद्धार धुरन्धर**·=दीनो का उद्धार करने मे समर्थ, **न आस्ते**=नही है, **मदन्य.**=मेरे अलावा, **कृपा पात्रं न**=क:पा पात्र नही है, **तथापि**=फिर भी, **एताम् श्रियं**=इस सासारिक लक्ष्मी को, **न याचे**=नही माँगता हूँ, **अर्हन्**=हे अरिहत देव!, **श्री रत्नाकर**=हे श्री रत्नाकर, **मंगल एक निलय:**=हे मगल के एकमात्र आगार!, **अहो**=आश्चर्य, **केवलं इदं एव**=केवल यही, **श्रेयस्करं शिवं**=कल्याण कारक शिव स्वरूप, **सद्बोधि रत्नं**=सद्वोधि रूप रत्न को, **प्रार्थये**=माँगता हूँ।

भावार्थ

हे जिनेन्द्र देव! दीन जनो का उद्धार करने मे एकमात्र आप ही समर्थ है। आपके अतिरिक्त अन्य कोई तारने वाला नही है और न ही मुझ जैसा कोई अन्य दया का पात्र भी है। हे स्वामिन्! मै आपसे लौकिक सम्पत्ति की याचना नही करता हूँ, लेकिन जो कल्याणकारी शिव स्वरूप को देने मे समर्थ, मंगल का मूल केन्द्र है, उस सम्यक्त्व रूप वोधि रत्न की आपेस प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझे प्रदान करे।

□

अमित गति द्वात्रिंशिका

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा-परत्वम्।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ
सदा ममात्मा विदधातु देव. ॥1 ॥

अन्वयार्थ

देव=हे देव !, मम-आत्मा=मेरी आत्मा, सदा=हमेशा, सत्त्वेषु मैत्री=समस्त प्राणियो पर मैत्री भाव को, गुणिषु प्रमोदं=गुणीजनो पर प्रमोद भाव को, क्लिष्टेषु जीवेषु:=दु खी जीवो पर, कृपा परत्वम्=दया भाव को, विपरीतवृत्तौ=विपरीत आचरण वालो पर, माध्यस्थ भावं=तटस्थ भाव को, विदधातु=धारण करे।

भावार्थ

हे परमात्म देव ! ससार के समस्त त्रस-स्थावर प्राणियो पर सदैव मैत्री भाव रहे, गुणो मे श्रेष्ठ सज्जन पुरुषो को देखकर मन मे हर्षोल्लास भाव जागृत बने, दु खी जीवो को देखकर हृदय मे करुणा भाव का स्रोत वहने लगे, और विपरीत वर्ताव करने-रखने वालो के प्रति तटस्थ दृष्टि, मध्यस्थ भाव रख सकू। ऐसी शक्ति मुझे दीजिए।

शरीरत कर्तु-मनन्त शक्तिं,
विभिन्न मात्मान-मपास्त दोषम्।
जिनेन्द्र! कोषादिव खड्ग-यष्टिं,
तव प्रसादेन ममास्तु शक्ति. ॥2 ॥

अन्वयार्थ

जिनेन्द्र!=हे जिनेन्द्र भगवन्, कोषात् खड्ग यष्टिं इव=म्यान मे तलवार की तरह, अनन्त शक्तिं=अनन्त शक्तिवान्, अपास्त दोषं=दोषो से रहित, आत्मानं=आत्मा को, शरीरत =शरीर से, विभिन्नं कर्तु=अलग करने के लिए, तव प्रसादेन=आपकी कृपा से, मम शक्ति=मेरी शक्ति, अस्तु=हो।

भावार्थ

हे जिनराज ! आपकी अनुग्रह दृष्टि से मुझमे ऐसी शक्ति प्रकट हो कि मैं अनन्त शक्ति सम्पन्न और सर्व वैभाविक विकारो-दोषो से रहित अपनी आत्मा

को शरीर से ऐसे पृथक् कर दूं जैसे कोई म्यान से तलवार को निकाल पूर्ण रूपेण अलग थलग कर देता है।

दुःखे सुखे वैरिणि-बंधु वर्गे,
योगे वियोगे भुवने वने वा।
निराकृताऽशेष ममत्व बुद्धेः
समं मनो मेऽस्तु सदाऽपि नाथ! ॥3 ॥

अन्वयार्थ

नाथ=हे मालिक !, निराकृताशेष ममत्व बुद्धेः=समस्त पर पदार्थों से ममत्व बुद्धि हटाने वाले, मे मनः=मेरा मन, दुःखे सुखे=दु.ख मे, सुख मे, वैरिणी बन्धु वर्गे=दुश्मनो मे, बन्धुओ के समूह मे, योगे-वियोगे=संयोग मे, विरह मे, भवने वने वा=भवन मे अथवा जगल मे, सदा अपि समं अस्तु=हमेशा भी समान रहे।

भावार्थ

हे स्वामीनाथ ! मेरा मन दु.ख के समय मे, अथवा सुखपूर्ण अवस्था मे, अनर्थ अनिष्ट करने वाले दुश्मनो पर, बन्धुओ पर, अनिष्ट वस्तु का सयोग होने पर अथवा प्रिय अभीप्सित वस्तु या व्यक्ति का वियोग होने पर, जगल मे या भवन मे ममत्व भाव एवं बुद्धि को हटाता हुआ सदा अनुकूल प्रतिकूल उभयावस्था मे समत्व भाव युक्त बना रहे। हे निर्ममत्वी प्रभो ! यही प्रार्थना, आपसे करता हूं।

मुनीश! लीना विव कीलिता विव,
स्थिरौ निषाताविव बिम्बिताविव।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा,
तमो धुनानौ हृदि दीपका विव ॥4 ॥

अन्वयार्थ

मुनीश=हे मुनीश्वर !, तमो धुनानौ=अन्धकार के विनाशक, दीपकौ इव=द्वय दीपक तुल्य, त्वदीयौ पादौ=आपके द्वय चरण, ममहृदि=मेरे हृदय में, लीनौ इव=तन्मय होने के समान, कीलितौ इव=वन्धे की तरह, स्थिरौ निपातौ इव=स्थिर रूप से धारण किए हुए के समान, विम्बितौ इव=चित्राकितवत्, सदा तिष्ठतां=सदा विराजमान रहे।

भावार्थ

हे मुनीश्वर। अज्ञान अन्धकार को दूर करने वाले आपके द्वय चरण कमल मेरे हृदय मे लीनता धारण किये हुए के समान, टांक कर स्थापित किए हुए

से, स्थिर रूप से रखे चित्रांकित की तरह दीपक सदृश सदा प्रकाश करते हुए विराजमान रहे ।

एकेन्द्रियाद्या यदि देव! देहिन.,
प्रमादत. संचरता इतस्तत ।।
क्षता विभिन्ना मलिता निपीडिता,
तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ।।5 ।।

अन्वयार्थ

देव=हे देवाधिदेव !, इत तत =इधर से उधर, संचरता=विचरते हुए, यदि=अगर, एकेन्द्रियाद्या:=एकेन्द्रियादि, देहिन =देहधारी प्राणी, क्षता.=विनष्ट हुए हो, विभिन्ना.=अलग अलग कर दिये हो, मलिता=परस्पर मे मिला दिये हो, निपीडिता=पीडित किए हो, तदा=तो, तत्=वह, दुरनुष्ठितं=दुराचरण, मिथ्या अस्तु=निष्फल हो ।

भावार्थ

हे देवाधिदेव जिनवर! इधर से उधर परिभ्रमण करते हुए यदि एकेन्द्रिय आदि देहधारी प्राणी नष्ट हो गए हो, उन्हे छिन्न-भिन्न कर दिए हो अथवा मिला दिए हो, त्रास पहुँचाया, सताया हो, तो वह हिंसामय दुराचरण मेरा निष्फल होवे ।

विमुक्ति मार्ग प्रतिकूल वर्तिना
मया कषायाऽक्ष वशेन दुर्धिया।
चारित्र शुद्धे-र्यद कारि लोपनं,
तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृत प्रभो! ।।6 ।।

अन्वयार्थ

प्रभो=हे प्रभो!, विमुक्ति-मार्ग-प्रतिकूल=मोक्ष मार्ग के प्रतिकूल, वर्तिना.=आचरण करने वाले, दुर्धिया मया=दुर्बुद्धि वाले मुझमे, कषायाऽक्ष=कषाय और इन्द्रियो के, वशेन=अधीनहोकर, चारित्र-शुद्धे.=चारित्र शुद्धि का, यत् लोपनं अकारि=जो विलोप किया, मम तत्=मेरा वह, दुष्कृत मिथ्या अस्तु=दुष्कर्म निष्फल होवे ।

भावार्थ

हे प्रभु! आपने जो मुक्ति का मार्ग बतलाया है, उसके प्रतिकूल आचरण मैंने कषाय के वश मे होकर अथवा इन्द्रिय जनित विषय सुख की आकांक्षा के अधीन होकर दुर्बुद्धि से यदि किया हो, चारित्र शुद्धि के मार्ग को अपने स्वार्थ पूर्ति हेतु विलुप्त किया हो, तो वह मेरा दुष्कृत्य निष्फल हो ।

विनिन्द नाऽऽलोचन गर्हणैरहं
मनो वच· काय कषाय निर्मितम्।
निहन्मि पापं भव दुःख कारणं
भिषग् विषं मन्त्र गुणैरिवाऽखिलम्॥7॥

अन्वयार्थ

भिषग्=वैद्य, मंत्र गुणै·=मत्र गुणो से, अखिलं=समस्त, विषं इव=विष को नष्ट करने के समान, अहं=मै, विनिंदना आलोचन-गर्हणै.=अपने पापो की निन्दा, आलोचना और गर्हा के द्वारा, मनो वचःकाय कषाय=मन वचन और काया तथा कषाय से, निर्मितं=उपार्जित, भव दुःख कारणं पापं=जन्म मरण रूप ससार वृद्धि के दुःखो के हेतु रूप पाप कर्मो को, निहन्मि=नष्ट करता हूँ।

भावार्थ

हे अन्तर्यामी नाथ! मैने मन वचन और काय के योगो एव कषायिक वृत्ति से भव-दुःखो की वृद्धि और सुखो का ह्रास करने वाले जो पाप कर्म उपार्जित किए है। उन पाप-दोषो की आत्मसाक्षी से निंदा, गुरु साक्षी से पाप कर्मो को गर्हाकर स्वात्मा से अलग करता हूँ। भूल से सेवित, हर्षोल्लास से आचरित उन पापो की आलोचना अपने लिए अहित एवं अनर्थकारी जान कर करता हूँ। उन्हे निन्दा गर्हा-आलोचना के द्वारा नष्ट करता हूँ। जैसे कोई कुशल वैद्य मत्र के गुणो से समस्त विष को नष्ट करता है।

अतिक्रमं यं विमते-र्व्यतिक्रमं,
जिनाऽतिचारं सुचरित्र कर्मण.।
व्यधा-मनाचार-मपि प्रमादत.,
प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये॥8॥

अन्वयार्थ

जिन=हे जिनेश्वर देव!, सुचरित्र कर्मण·=उत्तम चारित्र के अनुष्ठान का, प्रमादत. यं=प्रमाद से जो, अतिक्रमं व्यतिक्रमं अतिचारं अनाचारं अपि=अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार भी, व्यधां=किया, तस्या शुद्धये=उसकी शुद्धि के लिए, प्रतिक्रमं करोमि=प्रतिक्रमण करता हूँ।

भावार्थ

हे जिनेश्वर देव। ग्रहण किए हुए चारित्र धर्म के शुद्ध आराधन-पालन मे प्रमाद वश मैने अशुभ भावना, दुष्संकल्प-विकल्प रूप अतिक्रमण किया हो, उन संकल्प-विकल्प-भावो के अनुरूप साधन एकत्र किये हो, योजना निर्मित की उसके अनुसार कार्य करने हतु कदम बढाने का अवसर उपस्थित किया हो

और योजना अनुसार कार्य करने रूप क्रिया-कलाप कर लिया हो। इन अतिक्रम-व्यतिक्रम अतिचार और अनाचार सम्बन्धी जो कोई दोष लगा हो उनको शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण करता हूँ।

क्षतिं मन शुद्धि विधेरतिक्रमं
व्यतिक्रमं शीलवृत्ते-र्विलंघनम्।
प्रभोऽतिचार विषयेषु वर्तनं
वदन्त्य-नाचार-मिहातिसक्तताम्॥9॥

अन्वयार्थ

प्रभो=हे परमात्मन्!, इह मन शुद्धि विधे=इस मन शुद्धि के विधान के, क्षतिं=हानि को, अतिक्रमं=अतिक्रम, शीलवृते विलंघनं व्यतिक्रमं=शीलाचार के उल्लघन को व्यतिक्रम, विषयेषु वर्तनं अतिचार=विषय-वासना मे प्रवर्तन को अतिचार और, अतिसक्ततां अनाचारं=अति आसक्ति को अनाचार वदन्ति कहते है।

भावार्थ

हे परमपिता परमेश्वर! मन शुद्धि को नष्ट करने रूप अतिक्रम, शीलाचार के सरक्षण के उल्लघन रूप व्यतिक्रम, इन्द्रियजन्य विषय-वासना मे प्रवृत्ति करने रूप अतिचार और उन विषयो मे आसक्ति रखकर जो अनाचार का सेवन किया है। यह सब दोष आपके प्रसाद से मेरे दूर हो।

यदर्थ मात्रा पद वाक्य हीनं
मया प्रमादाद् यदि किंच-नोक्तम्।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी,
सरस्वती केवल बोध लब्धिम्॥10॥

अन्वयार्थ

मया प्रमादाद्=मैंने प्रमाद से, यदि यत्=अगर जो, अर्थ-मात्रा-पद-वाक्य-हीनं=अर्थ मात्रा पद और वाक्य से हीन, किंचित् उक्तं=कुछ कहा हो तो, मे तत्=मेरा वह अपराध, क्षमित्वा=क्षमा करके, सरस्वती देवी केवल बोध=सरस्वती देवी! केवल ज्ञानरूपी, लब्धि विद्धातु=लब्धि प्रदान करे।

भावार्थ

अपूर्ण अवस्था के कारण मैंने प्रमाद वश अगर अर्थ-मात्रा पद और वाक्य से हीन कुछ भी कहा हो, जिन वचनो के विरुद्ध बोला होऊँ तो वह मेरा अपराध हे सरस्वती देवी! क्षमा करें। और मुझे केवल बोध रूप शक्ति देवे।

बोधि समाधि परिणाम शुद्धिः
स्वात्मोपलब्धि शिव सौख्य सिद्धिः।
चिन्तामणि चिंतित वस्तु दाने
त्वां वन्द्यमानस्य ममाऽस्तु देवि! ॥11॥

अन्वयार्थ

देवि=हे सरस्वती देवी!, चिंतित वस्तु दाने=सोची गई वस्तु के दान मे, चिंतामणि=चिन्तामणि के समान, त्वां=आप, वंद्यमानस्य मम=वन्दन करने वाले मुझको, बोधिः=यथार्थवोध, समाधिः=चित्त समाधि, परिणाम शुद्धिः=भावो की शुद्धि, स्वात्मः उपलब्धि =अपने आत्मस्वरूप की प्राप्ति, शिव सौख्य सिद्धिः=मोक्ष सुख की सिद्धि, अस्तु=हो।

भावार्थ

हे सरस्वती देवी! आप मनोवांछित वस्तु को प्रदान करने मे चिंतामणि सदृश है। आपकी वन्दना करने वाले मुझ को आप यथार्थ वोध, चित्त समाधि, भावो की शुद्धि, आत्मस्वरूप की उपलब्धि परम कल्याण रूप मोक्ष सुख की सिद्धि आपके प्रसाद से हो।

यः स्मर्यते सर्व मुनीन्द्र वृन्दैः
य. स्तूयते सर्व नराऽमरेन्द्रै.।
यो गीयते वेद पुराण शास्त्रै.
स देव देवो हृदय ममाऽऽस्ताम्॥12॥

अन्वयार्थ

य. सर्व=जो समस्त, मुनीन्द्र वृन्दैः स्मर्यते=मुनीन्द्र वर्ग से स्मरण किया जाता है, य. सर्व नरा. अमरेन्द्रै.=जो सभी नराधिपतियो और देवेन्द्रो से, स्तूयते=स्तुति किया जाता है, य. वेदः पुराण शास्त्रै =जो वेदो पुराणो शास्त्रों से, गीयते=गाया जाता है, स. देव देव.=वह देवाधिदेव अरिहंत प्रभो! मम हृदये आस्ताम्=मेरे हृदय मे विराजमान रहे।

भावार्थ

जिनको गणाधिपति, गच्छ नायक सदा स्मरण करते है, जिनका देवराज इन्द्र और नरधिप नरेन्द्र स्तवन करते है, जिनकी वेद पुराण-शास्त्र गुण-गौरव विरदावली गाते है वह देवाधिदेव अरिहत मेरे हृदय मे सदा विराजित रहे।

यो दर्शन ज्ञान सुख स्वभाव,
समस्त संसार विकार वाह्य ।
समाधि गम्य परमात्म सज्ञ,
स देव देवो हृदये ममाऽऽस्ताम् ॥13 ॥

अन्वयार्थ

य. दर्शन ज्ञान सुख स्वभाव=जो अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख के स्वभाव गुण से सम्पन्न है, समस्त संसार विकार वाह्य=ससार के समस्त विकारो से रहित है, समाधि गम्य=समाधि भाव को प्राप्त है, परमात्म संज्ञ=परमात्म सज्ञा वाले, स देव देव=वह देवो का स्वामी देव, मम हृदये आस्तां=मेरे हृदय मे विराजते रहे ।

भावार्थ

जो अनन्त दर्शन, ज्ञान और सुख स्वरूप वाले है, ससार के विकारो से जो पूर्ण रूप से विमुक्त है, जो कर्मो को समाधिस्थ करने वाले है, और योगी पुरुष जिसे परमात्मा कहकर पुकारते है । वह देवाधिदेव मेरे अन्तर्हृदय मे विराजमान रहे ।

निषूदते यो भव दु.ख जालं
निरीक्षते यो जगदन्तरालम् ।
योऽन्त-र्गतो योगी निरीक्षणीय
स देव देवो हृदये ममाऽऽस्ताम् ॥14 ॥

अन्वयार्थ

य भव दु ख जाल=जो भव दु खो के षडयन्त्र को, निषूदते=नष्ट करता है, य जगदन्तरालं=जो जगत् के मध्य भाग को, निरीक्षते=देखता है, अन्तर्गत य=जो अन्त स्थित है, योगी निरीक्षणीय=योगी महात्मो से देखने योग्य है, स देव देव=वह देवाधिदेव, मम हृदये आस्तां=मेरे हृदय मे विराजमान् रहे ।

भावार्थ

जो जन्म मरण रूप ससार के दु खो के फैले हुए जाल काटता है, जो सम्पूर्ण जगत को अपने अन्तराल मे देखता है, जो योगी-ध्यानी महात्माओ के द्वारा अपने हृदय मे निरीक्षण करने योग्य है, वे देवाधि देव! मेरे अन्तर्हृदय मे विराजमान रहे ।

विमुक्ति मार्ग प्रति पादको यो-
यो जन्म मृत्यु व्यसनाद् विमुक्त ।

त्रिलोक लोकी विकलोऽकलंक:
स देव देवो हृदये ममाऽऽस्ताम् ॥15 ॥

अन्वयार्थ

यः विमुक्ति मार्ग प्रतिपादक:=जो मोक्ष मार्ग का कथन करने वाले है, य जन्म मृत्यु व्यसनात् विमुक्त:=जो जन्म-मरण आदि दु:खो से रहित है, त्रिलोक लोकी=तीन लोक को देखता है, विकल.=शरीर रहित, अकलंक=निष्कलक है, सः देव देवः हृदये मम आस्तां=वह देवाधिदेव मेरे हृदय मे विराजमान रहे ।

भावार्थ

जो मोक्ष मार्ग का प्रतिपादन करने वाले है जन्म-जरा-मरण आदि दु:खो से सर्वथा रहित है । जो त्रिलोक को देखने वाले है, जो अशरीरी और निष्कलंक है, वे देवाधिदेव मेरे हृदय मे सदा विराजमान रहे ।

क्रोडी कृताऽशेष शरीरि वर्गा:
रागादयो यस्य न सन्ति दोषा: ।
निरीन्द्रयो ज्ञान मयोऽनपाय:
स देव देवो हृदये ममाऽऽस्ताम् ॥16 ॥

अन्वयार्थ

अशेष=समस्त, क्रोडी कृता=व्याप्त करने वाले, शरीरि वर्गा.=प्राणि वर्ग को, रागादय. दोषा:=राग आदिक दोष, यस्य न सन्ति.=जिसके नहीं है, स. निरीन्द्रिय=वह अतीन्द्रिय, ज्ञानमय.=ज्ञानमय, अनपाय.=अनश्वर है, देव देव मम हृदये आस्तां=देवाधिदेव मेरे अन्त करण मे विराजमान होवे ।

भावार्थ

संसार के समस्त प्राणिवर्ग को अपने अधीन करने वाले, राग-द्वेष, विषय-कषायादि दोषो से सर्वथा रहित है, जो अतीन्द्रिय है, ज्ञानमय है, अक्षीण स्वभावी है, वह देवाधिदेव मेरे हृदय मे सदा विराजमान रहे ।

यो व्यापको विश्व जनीन वृत्ति,
सिद्धो विबुद्धो धुत कर्म वन्ध ।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं,
स देव देवो हृदये ममाऽऽस्ताम् ॥17 ॥

अन्वयार्थ

य. व्यापक·=जो सर्व व्यापक है, विश्वजनीन वृत्ति=विश्व कल्याण का स्वभाव वाला है, सिद्ध=सिद्ध है, विबुद्ध=ज्ञायक स्वभावमय है, धुत कर्म बन्ध.=कर्मबन्धनो का नाशक है, ध्यात:=ध्याने से, सकलं विकारं=सम्पूर्ण विकारो को, धुनीते=नष्ट करता है, सदेव देव. मम हृदये आस्तां=वह देवो का देव मेरे हृदय मे विराजमान रहे।

भावार्थ

ससार के दु खो से बचाने, उद्धार करने का स्वभाव जिनका सहज है,जो ज्ञान दृष्टि से सर्वव्यापक है, सकल सिद्धियो के केन्द्र आत्मसिद्धि पाने से कृतकृत्य बन गए है, जानने के स्वभाव वाले है, सर्व कर्म बन्धनो के बन्धन से रहित हैं, जिनको ध्याने से अन्त करण के कषायिक दोष, वैषयिक विकार नष्ट हो जाते है, वे देवाधिदेव ! मेरे अन्तर्हृदय मे सदा विराजमान रहे।

न स्पृश्यते कर्म कलंक दोषै,
यो ध्वान्त संघैरिव तिग्म रश्मि.।
निरंजनं नित्य-मनेक-मेकं,
त देव-माप्तं शरणं प्रपद्ये ॥18 ॥

अन्वयार्थ

ध्वान्त: संघै=अन्धकार समूह से, तिग्म रश्मि. इव=सूर्य छूता नही वैसे, य. कर्म कलंक दोषै=जो कर्म कलक और रागादि वैभाविक गुणों से, न स्पृश्यते=स्पृष्ट नही होते है, निरंजनं=कर्म अजन से रहित, नित्य=शाश्वत, अनेकं=अनेक, एक=एक स्वरूप, तं आप्तं देवं=उस महान देव की, शरणं प्रपद्ये=शरण ग्रहण करता हूँ।

भावार्थ

जिस प्रकार सूर्य, अन्धकार समूह से स्पर्शित नही होता हैं। उसी प्रकार जो कर्म कलक आदि वैभाविक गुणो से स्पर्शित नही होते हैं। ऐसे कर्म अजन से रहित, शाश्वत अनेक एक रूप उन महान् देव की शरण को स्वीकार करता हूँ।

विभासते यत्र मरीचि माली
न विद्यमाने भुवनाव भासी।
स्वात्म स्थितं बोधमय प्रकाशं
तं देव-माप्तं शरण प्रपद्ये ॥19 ॥

अन्वयार्थ

भुवनावभासी=भुवन को प्रकाशित करने वाला, मरीचि माली=सूर्य, यत्र विद्यमाने=जहाँ विद्यमान रहने पर, न विभासते=शोभा नही पाता, स्वात्म स्थितं=अपने आत्मा मे स्थित, बोधमय प्रकाशं=ज्ञानमय प्रकाश वाले, तं आप्तं देवं शरणं प्रपद्ये=उस आप्त देव की शरण स्वीकारता हूं।

भावार्थ

जिस देव के साक्षात् उपस्थित रहने पर लोक प्रकाशक सूर्य शोभा नही पाता, जो अपने आत्मा मे स्थित है और ज्ञानमय प्रकाश वाले है मै उसी आप्तदेव की शरण स्वीकार करता हूं।

विलोक्य माने सति यत्र विश्वं
विलोक्यते स्पष्ट मिदं विविक्तं।
शुद्धं शिवं शान्त मनाद्यनन्तं
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ।।20 ।।

अन्वयार्थ

यत्र विलोक्यमाने सति=जिसके देखने पर, इदं विश्वं=यह सारा ससार, स्पष्टं विविक्तं विलोक्यते=स्पष्ट रूप से पृथक्-पृथक् दिखाई देता है, शुद्धं=शुद्ध, शिव=कल्याण, शांतं=शांत स्वरूप वाले, अनाद्यनन्तं=आदि अन्त से रहित, आप्तं महान तं=उस, देवं शरणं प्रपद्ये=देव की शरण को लेता हूं।

भावार्थ

जिसको देख लेने पर यह सम्पूर्ण विश्व स्पष्ट और पृथक्-पृथक् दिखाई देता है। जो शुद्ध है, शात है, आदि अन्त से रहित है और शिव स्वरूप है। मैं उसी आप्त देव की शरण को लेता हूं।

येन क्षता मन्मथ मान मूर्च्छा
विषाद निद्रा भय शोक चिन्ता.।
क्षय्योऽनलेनेव तरू प्रपंच-
स्तं देव माप्तं शरणं प्रपद्ये ।।21 ।।

अन्वयार्थ

अनलेन=अग्नि से, तरू प्रपंचः क्षय्य इव=जैसे वृक्षो का समूह भस्म कर दिया जाता है, येन=जिसके द्वारा, मन्मथ मान मूर्च्छा विषाद=काम, मान, मूर्च्छा, विषाद, निद्रा भय शोक, चिन्ता क्षता=निद्रा, भय, शोक, चिन्ता आदि क्षय कर

दिये गए है, तं आप्तं देव शरणं प्रपद्ये=उस महादेव की शरण को प्राप्त होता हूॅ।

भावार्थ

जिस तरह अग्नि से वृक्षो का समूह जल कर भस्मीभूत हो जाते है, उसी प्रकार जिसने काम-विकार, मान, मूर्च्छा विषाद निद्रा भय शोक और चिन्ता आदि सर्व मानसिक विकृतियो को नष्ट कर दिया, उसी आप्त देव की शरण को मैं ग्रहण करता हूॅ।

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी,
विधानतो नो फलको विर्निमित.।
यतो निरस्ताक्ष कषाय विद्विषः,
सुधीभिरात्मेष सुनिर्मलो मत. ॥22 ॥

अन्वयार्थ

विधानत.=विधान से, न संस्तर.=न आसन है, अश्मा=पाषाण है, न तृणं=न तृण पुज है, न मेदिनी=न पृथ्वी है, नो विनिर्मित फलक =न ही बनाया हुआ काष्ठ का बाजौट है, यत =क्योकि, सुधीभि =बुद्धिमानो ने, निरस्त अक्ष कषाय विद्विष =इन्द्रिय के विषय-कषाय रूपी शत्रुओ से रहित, सुनिर्मल. आत्मा एव=परम निर्मल आत्मा ही, मत =माना गया है।

भावार्थ

ध्यान का आसन न शय्या है, न पत्थर है, न तृण है, न भूमि है और न काष्ठफलक-पाटा है, किन्तु जिसके अन्तर से विषय-कषाय रूप शत्रु हट गये है उसी निर्मल आत्मा को ज्ञानियो ने ध्यान का आसन माना है।

न संस्तरो भद्र! समाधि साधनं
न लोक पूजा न च संघ मेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्म रतो भवाऽनिशं
विमुच्य सर्वा मपि बाह्य वासनाम् ॥23 ॥

अन्वयार्थ

भद्र=हे भद्र !, यत =क्योकि, न संस्तर=न शय्या आसन है, न लोकपूजा=न ससारिक पूजा, न च संघ मेलनम्=और न सघ सम्मेलन, समाधि साधनम्=समाधि के साधन है, तत =इसलिए, सर्वा बाह्य-वासनाम्=समस्त बाह्य वासनाओ को, विमुच्य=छोडकर, अनिशं अपि=निरन्तर भी, अध्यात्म रत भव=अध्यात्म मे रमे रहो।

भावार्थ

हे भद्र ! समाधि का साधन न शय्या है, न लोकपूजा है और न सघ का एकत्र करना है इसलिए सभी बाहरी वासनाओ अर्थात् लोकेषणाओ को छोडकर अपने अध्यात्म स्वरूप मे निरन्तर रमण करते रहो।

न सन्ति बाह्या मम केचनार्था,
भवामि तेषां न कदाचनाऽहम्।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं
स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र! मुक्त्यै ॥24 ॥

अन्वयार्थ

केचन बाह्याः अर्थाः=कोई बाह्य पदार्थ, **मम न सन्ति**=मेरे नही है, **अहं तेषां**=मै उनका, **न कदाचन भवामि**=कदापि नही हूँ, **इत्थं विनिश्चित्य**=इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके, **बाह्यं विमुच्य**=बाहर के पदार्थों को छोड़कर, **भद्र**=हे भद्रात्मन्, **त्वं सदा**=तुम सदा, **स्वस्थः भव**=स्वात्मा मे स्थिर रहो।

भावार्थ

कोई भी बाहर के पदार्थ मेरे नही है और न मै कभी उनका हूॅ। ऐसा दृढ़ विश्वास अटल निश्चय करके हे भद्र पुरुष ? बाह्य वस्तुओ की ममता-मूर्च्छासक्ति एवं पाने तथा रखने की लालसा का परित्याग कर तू निर्वाण सुख पाने के लिए सदा अपने आत्म स्व रूप मे स्थिर रह।

आत्मान-मात्मन्य-वलोक्यमानस्
त्वं दर्शन ज्ञान मयो विशुद्धः।
एकाग्र चितः खलु यत्र तत्र
स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम् ॥25 ॥

अन्वयार्थ

आत्मनं=आत्मा को, **आत्मीन**=आत्मा मे, **अवलोक्यमान**=देखते हुए, **त्वं दर्शन ज्ञान मयः**=तुम अनन्त दर्शन ज्ञानमय, **विशुद्ध**=निर्मल हो, **खलु**=निश्चय ही, **यत्र तत्र अपि**=जहाॅ तहाॅ भी, **स्थित.**=रहा हुआ, **एकाग्रचित साधु**=एकाग्रचित्त वना साधु, **समाधिं लभते**=समाधि को प्राप्त करता है।

भावार्थ

हे आत्मन्! तू अपने आत्मा को अपनी आत्मा मे देख! तू अनन्त दर्शन ज्ञानमय शुद्ध स्वभाव वाला है। इस प्रकार से एकाग्र चित्त होकर जहाॅ कहीं भी साधु स्थिर बन कर आत्म समाधि भाव को प्राप्त कर लेता है।

एकः सदा शाश्वति को ममाऽऽत्मा,
विनिर्मल· साधिगम स्वभाव ।
बहिर्भवा सन्त्य परे समस्ताः
न शाश्वता कर्म भवा· स्वकीया ॥26 ॥

अन्वयार्थ

मम आत्मा=मेरी आत्मा, सदा एकः=सदा एकाकी, शाश्वतिकः=शाश्वत है, विनिर्मल =शुद्ध, साधिगम स्वभाव.=ज्ञान स्वभाव से युक्त है, अपरे समस्ताः=अन्य समस्त, बहिर्भवा=बाहरी पदार्थ, कर्मभवा=कर्म जनित है, स्वकीयाः शाश्वताः न सन्ति=वे अपने किए शाश्वत नही है ।

भावार्थ

मेरी आत्मा सदैव एक है, शाश्वत है सर्वकर्ममल से रहित शुद्ध है, ज्ञान स्वभावी है, इसके अतिरिक्त अन्य जितने भी बाह्य पदार्थ और राग द्वेषादि भाव है, वे सब कर्मजनित है, अशाश्वत है ।

यस्याऽस्ति नैक्यं वपुषाऽपि सार्द्ध
तस्याऽस्ति किं पुत्र कलत्र मित्रै. ।
पृथक् कृते चर्मणि रोम कूपा.
कुतो हि तिष्ठन्ति शरीर मध्ये ॥27 ॥

अन्वयार्थ

यस्य वपुषा सार्द्ध अपि=जिसका शरीर के साथ भी, न ऐक्यं=एकता नही है, तस्य पुत्र कलत्र मित्रैः=उसका पुत्र, स्त्री और मित्रो के साथ, किं अस्ति=क्या है, चर्मणि पृथक् कृते=चमडी को अलग करने पर, शरीर मध्ये=शरीर के मध्य मे, रोम कूपा =छिद्र, हि कुत्तो·=ही कैसे, तिष्ठन्ति=रहेंगे ।

भावार्थ

जिस आत्मा का शरीर के साथ भी एकत्व नही है उसका पुत्र, स्त्री और मित्रो के साथ एकत्वपन कैसे रह सकता है? चमडी को शरीर से अलग करने पर रोम के छिद्र शरीर मे कैसे रह सकते है?

संयोगतो दु:ख मनेक भेदं,
यतोऽश्नुते जन्म वने शरीरी ।
ततस्त्रिधाऽसौ परिवर्जनीयो,
यियासुना निर्वृति-मात्मनीनाम् ॥28 ॥

अन्वयार्थ

यत· शरीरी=जहाँ शरीर धारी, जन्म वने=जन्म रूप अरण्य मे, संयोगतः=सयोग से, अनेक भेदं दुःखं=अनेक प्रकार के दु·खो को, अश्नुते=पाता है, अतः=इसलिए, आत्मनीनां=आत्मा की, निवृत्ति यियासुना=मुक्ति चाहने वाले को, असौ त्रिधा=वह संयोग तीनो प्रकार से, परिवर्जनीय=छोडने योग्य है।

भावार्थ

बाह्य पदार्थो मे ममत्व भाव का संयोग होने से यह प्राणी उत्पत्ति रूप जंगल मे अनेक प्रकार के दु·खो को पाता है। इसलिए इन दुःखो से मुक्त बनने के इच्छुक को मनसा वाचा, कर्मणा इनका त्याग कर अपनी आत्मा को बचाना चाहिए। इन संयोगो का त्याग तीनो प्रकार से करना उसके लिए योग्य है।

सर्व निराकृत्य विकल्प जालं
संसार कान्तार निपात हेतुम्।
विविक्त-मात्मान मवेक्ष्यमाणो
निलीयसे त्वं परमात्म तत्त्वे ॥29 ॥

अन्वयार्थ

संसार कान्तार=संसार रूपी वन मे, निपात हेतुं=गिरने का कारण, सर्व विकल्प जालं=सम्पूर्ण विकल्प जाल को, निराकृत्य=हटाकर, विविक्तं आत्मानं=एक मात्र आत्मा को, अवेक्ष्य माण =देखते हुए, त्वं परमात्व तत्त्वे=तुम परमात्म स्वरूप मे, निलीयसे=लीन रहो।

भावार्थ

ससार वन मे भटकाने वाले सर्वविकल्प जाल को दूर हटाकर एकमात्र सबसे भिन्न स्वात्मा को देखते हुए, हे आत्मन्! तुम परमात्मा तत्त्व मे लीन रहो।

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा,
फलं तदीयं लभते शुभाऽशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं,
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥30 ॥

अन्वयार्थ

आत्मना=आत्मा ने, पुरायत् कर्म=पहले जो कर्म, स्वयं कृतं=स्वय ने किये है, तदीयं शुभाऽशुभं फलं=उनके शुभ अथवा अशुभ फल को, स्फुटं लभते=स्पष्ट

रूप से प्राप्त होता है, **यदि परेण दत्तं**=अगर दूसरे के द्वारा दिया, **लभ्यते**=प्राप्त होता है, **तदा**=तब, **स्वयं कृतं कर्म**=अपने किये कर्म, **निरर्थकं**=व्यर्थ हो जायेगे।

भावार्थ

हे आत्मन्। जिस जीव ने पूर्व काल मे जैसे कर्म सचित किए है, वह उन्ही का शुभा-शुभ फल पाता है। अगर कोई दूसरे द्वारा दिए कर्मो का फल पाने लगेगा तब उसके स्वयं के किए कर्म व्यर्थ साबित हो जायेगे।

निजार्तितं कर्म विहाय देहिनो
न कोऽपि कस्याऽपि ददाति किंचन।
विचारयन् नेव मनन्यं मानसः
परो ददातीति विमुच्य शेमुषीम्॥31॥

अन्वयार्थ

निजार्जितं कर्म विहाय=अपने उपार्जित कर्मो के अतिरिक्त, **कोऽपि**=कोई भी, **कस्याऽपि**=किसी से भी, **देहिनः**=प्राणी को, **किंचन न ददाति**=कुछ नही देता है, एवं **विचारयन्**=ऐसा विचार करते हुए, **आत्मन्**=हे आत्मन!, **परः ददाति इति**=दूसरा देता है इस प्रकार की, **शेमुषीं विमुच्य**=बुद्धि को छोड़कर, **अनन्य मानस**=एकाग्रचित हो।

भावार्थ

अपने सचित कर्मो को छोडकर कोई किसी भी प्राणी को सुख या दुःख कुछ भी नही देता। ऐसा विचार करते हुए हे आत्मन्! तूं एकाग्र चित्त बन। और दूसरा देता है इस बुद्धि का परिहार कर। इस चिन्तन से तू अपने आपको राग द्वेष से बचा लेगा।

यै. परमात्माऽमित गति वन्द्य
सर्व विवक्तो भृश-मनवद्य.।
शश्वदधीते मनसि लभन्ते-
मुक्ति निकेतं विभव वरं ते॥32॥

अन्वयार्थ

य=जिन पुरुषो ने, अमित गति वन्द्य.=अपरिमित ज्ञान होने से या अमितगति द्वारा वन्दनीय, सर्व विविक्त=सर्वकर्मो से विमुक्त, भृशं अनवद्यः=अत्यन्त निर्दोष, परमात्मा=परमात्मा, मनसि=मन मे, शश्वत्=निरन्तर, अधीते=चिन्तन करते है,

ते विभव-वरं=वे परम श्रेष्ठ वैभव वाले, **मुक्ति निकेतं**=मुक्ति महल को, **लभन्ते**=प्राप्त होते है।

भावार्थ

जो परमात्मा अपरिमित ज्ञानी होने से अमितगति आचार्य से वन्दनीय है, जो कर्मो से विमुक्त सबसे भिन्न हैं और पूर्ण निर्दोष है, उनका जो निरन्तर मन मे चिन्तन करते है, वे पुरुष सर्वश्रेष्ठ आत्म श्री वाले मोक्ष महल को पाते है।

इति द्वात्रिंशता वृत्तैः परमात्मानमीक्षते
योऽनन्य गत चेतस्को यात्यसौ पदमव्ययम् ॥33 ॥

अन्वयार्थ

यः अनन्य-गत चेतस्कः=जो एकाग्रचित्त होकर, **इति द्वात्रिंशता**=इन बत्तीस, **वृत्तै.**=पद्यो से, **परमात्मानं**=परमात्मा का, **ईक्षते**=दर्शन करता है, **असौ**=वह, **अव्ययं**=अविनाशी, **पदं**=पद को, **याति**=प्राप्त होता है।

भावार्थ

इस प्रकार उपर्युक्त बत्तीस छदो से जो एकाग्रचित्त होकर परमात्मा का चिन्तन करता है। वह अविनाशी शिव पद को पा लेता है।

☐

श्री हुक्म्यष्टकं स्तोत्रं

गृह-मोह-ममत्व-विनाशकरं,
शुभ संयम-भाव-रतं विरतम्।
सुसमाधियुतं-गणि कीर्तिधरं,
प्रणमामि महामुनि हुक्मि गुरुम्।।1 ।।

भावार्थ

घर परिवार सम्बन्धी मोह-ममत्त्व का नाश करने वाले, ससार से विरत, प्रशस्त, सयम भाव मे रत, उत्तम समाधि से युक्त, आचार्यो के योग्य, कीर्ति को धारण करने वाले महामुनि श्री हुक्मीचन्द जी महाराज को नमस्कार करता हूँ।

प्रशमादि-विकास-गुणैः कलित-
मुपदेश-सुधा-वलितं मुदितम्।
महिते निज-मुक्ति-पथे-निरतं
प्रणमामि महामुनि हुक्मि गुरुम्।।2 ।।

भावार्थ

शम-सवेगादि विकास के गुणो से शोभित, अमृतोपम उपदेश को प्रवाहित करने वाले, प्रसन्नचित, प्रशस्त मोक्षपथ मे निरत, महामुनि श्री हुक्मीचन्द जी महाराज को मै नमस्कार करता हूँ।

भव-पातक-मान रूजा रहितं,
सुखदायक-भाव युतं सततं।
भवभीतिहरं शिव सत्यवरं,
प्रणमामि महामुनि हुक्मि गुरुम।।3 ।।

भावार्थ

जन्म, मरणरूप ससार के गर्त मे गिराने वाले, अभिमान रूप आन्तरिक रोग से रहित, निरन्तर सुखदायक भाव से युक्त-भव भीति की दूर करने वाले, शिव सत्य को वरने वाले महामुनि श्री हुक्मीचन्द जी महाराज को मै नमस्कार करता हूँ।

तपसा सहितं विदुषां महितं,
शशि-पूर्ण सुशोभित दिव्यमुखम्।

रवि-तुल्य-विभासित दीप्तिधरं,
प्रणमामि महामुनि हुक्मि गुरुम् ॥4 ॥

भावार्थ

21 वर्ष पर्यन्त बेले-बेले के तप से युक्त, विद्वानो द्वारा पूजनीय, पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्रमा के समान दिव्य मुख वाले, सूर्य के समान विभासित दीप्तिवान महामुनि श्री हुक्मीचन्द जी महाराज को मैं नमस्कार करता हूँ।

मनसा वाचसा वपुषा विमलं,
करणा-धिषणा-गरिमादियुत्तम्।
सुनयैः सुगुणै. सुकृतैरनधं
प्रणमामि महामुनि हुक्मि गुरुम् ॥5 ॥

भावार्थ

मनवचन और काया से निर्मल, करुणा, वंत, बुद्धिमान तथा गौरव गरिमावत श्रेष्ठ स्यादवाद सिद्धान्त एव सुनय को धारण करने वाले सगुणो एव सुकृत्यो से अनवधचारित्री महामुनि श्री हुक्मीचन्द जी महाराज को मैं नमस्कार करता हूँ।

नगरे-नगरे सुख शांतिकरं
वहु साधु जनै. विनयाभिनुत्तम्।
निजकर्म विदारकरं विशदं,
प्रणमामि महामुनि हुक्मि गुरुम् ॥6 ॥

भावार्थ

नगर-नगर मे सुख शाति का सचार करने वाले, अनेक मुनिवरो द्वारा विनयपूर्वक अभिवन्दित, उज्ज्वल चरित्रयुक्त आत्मा को कलुपित बनाने वाले कर्मो के नाशक निर्मल महामुनि श्री हुक्मीचन्द जी महाराज को मे नमस्कार करता हूँ।

शरणागत रक्षणदक्षवरं,
जगति प्रथितं सुयशोभरितम्।
जन संकटनाशक भक्तिरतं
प्रणमामि महामुनि हुक्मि गुरुम् ॥7 ॥

भावार्थ

शरणागत प्राणियो की रक्षा करने मे दक्ष, संसार मे श्रेष्ठ जगत् प्रसिद्ध सुयश से परिपूर्ण, जन-जन के सकट नाशक, परमात्म भक्ति मे रत, महामुनि श्री हुक्मीचन्द जी महाराज को मै नमस्कार करता हूँ।

भव-सागर-पंक-निमग्ननृणां,
जिन भाषित बोध, सुखं प्रददौ।
तमऽहं गुण सागरं बुद्धिनिधिं
प्रणमामि महामुनि हुक्मि गुरुम् ॥8॥

भावार्थ

भव सागर पक (कीचड) मे निमग्न मनुष्यो को जिन्होने सुखकारी जिनोपदिष्ट बोध प्रदान किया, उन गुणो के सागर और बुद्धि के निधान महामुनि हुक्मीचन्द जी महाराज को नमस्कार करता हूँ

छन्द अनुष्टप् प्रशस्ति

गुरु हुक्म्यष्टकं स्तोत्रं,
मुनिज्ञानेन निर्मितम्।
पठन्ति ये नरा भक्त्या,
सिद्धिसौधं, व्रजन्ति ते ॥9॥

भावार्थ

मुनि 'ज्ञान' के द्वारा निर्मित पूज्य हुक्माष्टक स्तोत्र को जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पठन-श्रवणकरते है, वे मुक्ति रूपी महल को प्राप्त करते है।

□

नानेश गुणाष्टक

सौम्यं मनोहर विशाल-पवित्र-गात्रं,
उर्ज्जस्वलं हरति चन्द्र-मसोऽपि कान्तिम्।
योगीन्द्र-नाथ-मिव यस्य विभाति रूपं,
नानेश इत्यभिहितं गणिनं प्रणौमि ॥1 ॥

भावार्थ

शान्त, आकर्षक, विशाल पवित्र शरीर वाले, चन्द्र के निर्मल कान्ति को हरने वाला प्रशान्त हसमुख चेहरा, महायोगी सी मुख-मुद्रा के प्रतीक 'नानेश' पद से सम्बोधित होने वाले आचार्य श्री को शतश. प्रणाम।

उद्दाम-मोह करि राज कठोर सिंहं,
कामादि वर्ग दलने नितरां प्रवीरम्॥
मिथ्यात्व-मोह-तमसो हरणेंऽशु-मालीं,
नानेश इत्यभि-हितं गणिनं प्रणौमि ॥2 ॥

भावार्थ

निरंकुश मदोन्मत्त गजराज के दमन मे सिंह के समान पराक्रमी, काम-क्रोधादि शत्रुओ को नष्ट करने मे अपराजेय वीर, मिथ्यात्व मोह के अन्धकार को दूर करने मे तेजस्वी भास्कर, 'नानेश' पद से अभि-सज्ञित आचार्य श्री को शतश. प्रणाम।

मन्ये त्वमेव भुवने किल देव देव,
सद्धर्म-देशक वरो मतिमान वरिष्ठ।
संविन्निहन्ति खलु यस्य-मदान्धकारं,
नानेश इत्यभिहितं गणिनं प्रणौमि ॥3 ॥

भावार्थ

'जिन नही पर जिन सदृश' इस आगमोक्त वाक्य के अनुसार मानता हूँ आप ही संसार मे निश्चय ही देवाधिदेव, सद् धर्म के श्रेष्ठ उपदेशक, प्रकृष्ट बुद्धिमान, मद रूपी अन्धकार के नाश के लिए ज्ञान दीप, 'नानेश' पद मे अभिमज्ञित आचार्य श्री को शतश प्रणाम।

सौम्याद् विधोरिव च कान्त मुखान्निः सृत्य,
भाषा प्रणाशयति निर्जडतां त्वदीया ॥
सम्यक् स्तुवन्ति प्रतिवादि जना जिताश्च,
नानेश इत्यभिहितं गणिनं प्रणौमि ॥4 ॥

भावार्थ

आपके चन्द्र सम सौम्य एव तेजस्वी श्री मुख से निकली भाषा अज्ञान को नष्ट कर देती है, जिसको सुन कर पराजित प्रतिवादी भी स्तुति करने लगते है ऐसे 'नानेश' पद से अभिसज्ञित आचार्य श्री को शतशः प्रणाम।

विद्या विवाद सहिता प्रतिपक्ष दक्षा,
स्तब्धा भवन्ति भवतां पटुतां विलोक्य।
श्रुत्वा गुणांश्च ननु ते विबुधा स्तुवन्ति,
नानेश इत्यभिहितं गणिनं प्रणौमि ॥5 ॥

भावार्थ

विद्या के विवाद से वाचाल, प्रतिपक्ष मे कुशल आपकी प्रवचन पटुता के दर्शन कर स्तब्ध हो जाते हैं, और जिनके गुणो को श्रवण कर निश्चय ही वे बुद्धिमान, देवगण स्तुति करते है, उन 'नानेश' पद से अभिसज्ञित आचार्य श्री को शतशः प्रणाम।

कर्म-प्रवाह-हरणे-सततं सुवीरा,
सिद्धान्त वाक्य परिपूर्ण-गुणन्विता या।
त्वय्येव भाति विरति-र्विकला-कलंका
नानेश इत्यभि-हितं गणिनं प्रणौमि ॥6 ॥

भावार्थ

सिद्धान्त मे कहे गये परिपूर्ण गुणो से सम्पन्न, कर्म प्रवाह को सतत हटाने मे श्रेष्ठ वीर, निष्कलंक निर्दोष विरति ही पावन आभूषण है, ऐसे नानेश पद की सज्ञा वाले आचार्य श्री को शतश प्रणाम।

त्वामेव शुद्ध मतिमान् महितश्च भक्त्या,
ध्यात्वा जहाति सकलं कृत-पूर्व-पापम्।
प्राप्नोति ध्रौव्य-मचल हि पदं च शीघ्रं,
नानेश इत्यभि-हितं गणिनं प्रणौमि ॥7 ॥

भावार्थ

हे निर्मलमति ! धारक और पूज्य आराध्य देव भक्ति से आपको ध्याकर अपने पूर्व सचित पाप कर्मो को नष्ट करता है और अवश्यमेव ध्रुव अचल पद को शीघ्र प्राप्त करता है। अत 'नानेश' पद से अभिसज्ञित आचार्य श्री को शतश· प्रणाम।

तुभ्यं नमो निरतिचार चरित्रराशे,
तुभ्यं नमो विगत दोष विशिष्ट योगिन्।
तुभ्यं नमो मुनि गणेषु गणि प्रवीर,
तुभ्यं नमोऽवनि तले विदुषां वरेण्य ॥8 ॥

भावार्थ

निरतिचार चरित्र के निधान आपको नमस्कार हो, दोषो से विहीन विशिष्ठ योगी आपको नमस्कार हो, मुनि मण्डल मे अति श्रेष्ठ आचार्य आपको नमस्कार हो, विद्वत् समाज मे श्रेष्ठ विद्वान आपको नमस्कार हो।

नाना गुणान्वित-मिदं हि गुणाष्टकं च
अल्प श्रुतेन सरलै. रुचिरं सुशब्दैः।
शान्त्याख्य लाल मुनिना रचितं सुभक्त्या,
य. संपठेत किल लभेत सुखं वरिष्ठम्॥

भावार्थ

नाना गुणो से मडित यह गुणाष्टक सरल, सरस, सुन्दर पदो मे शान्तिलाल मुनि ने रचा है। इसका श्रद्धा भक्तिभाव से अध्ययन पाठ करने वाला अवश्य ही श्रेष्ठ सुख का अधिकारी बनेगा।

□

उपसर्ग हर स्तोत्र

उपसर्ग हर श्री पार्श्व जिन, मंगल करण अवतार है।
सघन कर्म विमुक्ति कारक, सर्पादि विष हरतार है।
कल्याण के सद्धाम है पर स्वयं तो निष्काम है।
भक्ति सहित बन्दू उन्हें, गुणकर ललित ललाम है ॥1 ॥
सर्पादि का विष दूर कारक, नाम जिनका मंत्र है।
जो कष्ट में ध्याये इसे, वह भव्य परम पवित्र है।
सब रोग मारी ज्वर जरादिक, पास नहीं आते कभी।
ग्रह भूत प्रेतादिक भगे तव नाम लेते ही अभी ॥2 ॥
दूर ही रहे तव नाम मंत्र, प्रणाम भी बहुफल फले।
नारक पशु के दुःख टले, दौर्भाग्य नर भव का गले।
जब तक रहे संसार में, नर देवभव के सुख लहे।
तव नाम की महिमा अतुल, पर मंदमति जन ना सहे ॥3 ॥
जिनदेव पार्श्वनाथ सेवा, संसृति में अद्भुत कही।
कल्पद्रुम काम कुंभ धेनु, अचिंत्य मणि सम है सही।
श्रद्धा समन्वित जैसे नरादि, भीति हत होते सदा।
पाते सतत बिन बाध्य के, अमरादि का पद है मुदा ॥4 ॥
ॐ ह्रीं श्रीं ऐं ॐ अनन्त, हो वीर्य गुणधारक विभो!
सर्व आधि-व्याधि दूर जाये, दर्श से पावन प्रभो!
मनोकामना पूरक यथा, है कल्पद्रु गुणतम परम।
वैसे सफल होते मनोरथ नाम से सुखतम चरम ॥5 ॥
परमेष्ठि वाचक ॐ रु-ह्रीकार युक्त नागराज को।
करते नमन काम जयी, देवेन्द्र वन्द्य जिनराज को।
शान्त-दान्त, अक्लान्त-अभ्रान्त, ब्रह्म से शोभित प्रवर।
संसाधना की दीप्ति से, नव चेतना देवे प्रखर ॥6 ॥
विष के प्रहारक मन्त्र दाता, पार्श्व प्रभु शिव धाम है।
ध्याये इन्हे नित ध्यान से, वह नीरूज कल काम है।
ॐ ह्रीं क्ष्म्ल्व्र्यूं स्वाहा, धरणेन्द्र पद्मावती मंत्र है।

संसिद्धि का अनुपम अमोघ, यह यन्त्र अरु सु-तंत्र है ॥7 ॥
करते नमन ॐ पंचमेष्ठी, बीज मॉत्रिक देव को।
रक्षक परम ॐ ह्रीं सदा, शासन विधायक सेव को।
संरोद्रशाली कमठ ताप, का किये मद चूर्ण है।
करुणा सदन दिव्य दीप्ति, धन मंगल मय प्रपूर्ण है ॥8 ॥
ॐ ह्रीं प्रयुक्त अष्टाक्षरी, धरणेन्द्र पद्माराजते।
प्रत्यक्ष कीरति प्रथित है, विघ्न वाधाएँ ना छाजते।
मद अष्टके हारक प्रवल, सृति से न ममता मोह है।
कर्मारिपु के उच्छेद कर, पाते न जिनकी टोह है ॥9-10 ॥
हे महामुने! यशोधनी, भक्ति प्रभावक भावना।
चाहते तुम्हारे चरण से, सम्यत्तत्व की नित कामना।
संसार में जब तक रहे, आस्था प्रवल देते रहे
प्रकाश पुंज हे जिनदेव, नैया प्रवर खेते रहे ॥11 ॥

□